नाचो अहोभाव है नाच

मेरे प्रिय आत्मन,

एक नया मंदिर बन रहा था उस मार्ग से जाता हुआ एक यात्री उस नव निर्मित मंदिर को देखने के लिए रुक गया। अनेक मजदूर काम कर रहे थे। अनेक कारीगर काम कर रहे थे। न मालूम कितने पत्थर तोड़े जा रहे थे। एक पत्थर तोड़ने वाले मजदूर के पास वह यात्री रुका और उसने पूछा कि मेरे मित्र, तुम क्या कर रहे हो? उस पत्थर तोड़ते मजदूर ने क्रोध से अपने हथौड़े को रोका और उस यात्री की तरफ देखा और कहा, क्या अंधे हो! दिखाई नहीं पड़ता? मैं पत्थर तोड़ रहा हूं। और वह वापस अपना पत्थर तोड़ने लगा। वह यात्री आगे बढ़ा और उसने एक दूसरे मजदूर को भी पूछा जो पत्थर तोड़ रहा था। उसने भी पूछा, क्या कर रहे हो? उस आदमी ने अत्यंत उदासी से आंखें ऊपर उठाई और कहा, कुछ नहीं कर रहा, रोटी-रोटी कमा रहा हूं। वह वापस फिर अपना पत्थर तोड़ने लगा। वह यात्री और आगे बढ़ा और मंदिर की सीढ़ियों के पास पत्थर तोड़ते तीसरे मजदूर से उसने पूछा, मित्र क्या कर रहे हो? वह आदमी एक गीत गुनगुना रहा था। और पत्थर भी तोड़ रहा था। उसने आंखें ऊपर उठायीं। उसकी आंखों में बड़ी खुशी थी। और वह बड़े आनंद के भाव से बोला, मैं भगवान का मंदिर बना रहा हूं। फिर वह गीत गुनगुनाने लगा और पत्थर तोड़ने लगा।

वह यात्री चकित खड़ा हो गया और उसने कहा कि तीनों लोग पत्थर तोड़ रहे हैं। लेकिन पहला आदमी क्रोध से कहता है कि मैं पत्थर तोड़ रहा हूं, आप अंधे हैं? दिखाई नहीं पड़ता? दूसरा आदमी भी पत्थर तोड़ रहा है, लेकिन वह उदासी से कहता है कि मैं रोजी रोटी कमा रहा हूं। तीसरा आदमी भी पत्थर तोड़ रहा था, लेकिन वह कहता है, आनंद से गीत गाते हुए कि मैं भगवान का मंदिर बना रहा हूं।

ये जो तीन मजदूर थे उस मंदिर को बनाते करीब-करीब हम भी इन तीन तरह के लोग हैं जो जीवन के मंदिर को निर्मित करते हैं। हम सभी जीवन के मंदिर को निर्मित करते हैं, लेकिन कोई जीवन के मंदिर को निर्मित करते समय क्रोध में भरा रहता है, क्योंकि वह पत्थर तोड़ रहा है। कोई उदासी से भरा रहता है क्योंकि वह केवल रोजी-रोटी कमा रहा है। लेकिन कोई आनंद से भर जाता है, क्योंकि वह परमात्मा का मंदिर बना रहा है। जीवन को हम जैसा देखते हैं, जीवन को देखने की हमारी जो चित्त दशा होती है, वह जीवन की हमारी अनुभूति भी बन जाती है। जीवन को देखने की जो हमारी भाव दृष्टि होती है वही हमारे जीवन का अनुभव, जीवन की प्रतीति और जीवन का साक्षात्कार भी बन जाती है। पत्थर तोड़ते हुए से भगवान का मंदिर बनाने की जिसकी दृष्टि है, वह आनंद भर जाएगा। ओर हो सकता है, पत्थर तोड़तेत्तोड़ते उसे भगवान का मिलन भी हो जाए। क्योंकि उतनी आनंद की मनस्थिति पत्थर में भी भगवान को खोज लेती है। आनंद के अतिरिक्त परमात्मा के निकट पहुंचने का और कोई द्वार नहीं है। लेकिन जो क्रोध और पीड़ा में काम कर रहा हो,

उसे भगवान की मूर्ति में भी सिवाय पत्थर के और कुछ भी नहीं मिल सकता है। क्रोध की दृष्टि पत्थर के अतिरिक्त कुछ भी उपलब्ध नहीं कर पाती है। जो उदास है, जो दुखी है, वह अपनी उदासी और दुख को ही पूरी जीवन में फैला हुआ देख लें तो आश्चर्य नहीं है। हम वही अनुभव करते हैं, जो हम होते हैं। हम वही देख लेते हैं जो हमारी देखने की दृष्टि होती है। जो हमारा अंतर्भाव होता है।

दो सूत्रों के संबंध में मैंने कल और उससे पहले आपसे बात की है। पहला सूत्र था जीवन क्रांति के लिए, परमात्मा की दिशा में आंखें उठाने के लिए। पहला सूत्र था: विश्वास नहीं, विचार।

दूसरा सूत्र था: ज्ञान नहीं, विस्मय।

और तीसरा सूत्र है: दुख नहीं, आनंद। हम सारे लोग जीवन को दुख और पीड़ा से ही देखते हैं और हजारों वर्षों की शिक्षाओं ने, गलत शिक्षाओं ने जीवन को आनंद के भाव से देखने की हमारी क्षमता ही नष्ट कर दी है। जीवन को हम, वे लोग जो अपने धार्मिक समझते हैं, जीवन को असार, व्यर्थ, दुख भरा, ऐसा देखने के आदी हो गए हैं। न मालूम किस दुर्भाग्य के क्षण में मनुष्य जाति के ऊपर यह कालिमा आ पड़ी! न मालूम किस दुर्भाग्य के क्षण में मनुष्य जाति को यह खयाल पैदा हो गया कि परमात्मा और जीवन में कोई विरोध है! तो परमात्मा की तरफ केवल वे ही जा सकते हैं जो जीवन को बुरा, असार, दीन-हीन; घृणित..., कंडमनेशन जो जीवन का करें वे ही केवल परमात्मा की ओर जा सकते हैं। इस दृष्टि ने सारी मनुष्य जाति के चित्त को अंधकार और पीड़ा से भर दिया है। इस दृष्टि ने फिर परमात्मा को खोजने की दिशा हां बंद कर दी, द्वार ही बंद कर दिए। क्योंकि उसे जानने के लिए आनंद से थिरकता हुआ हृदय चाहिए, गीत गाती हुई श्वासें चाहिए, नृत्य करता हुआ चित्त चाहिए तो ही हम उसके अनुभव को उपलब्ध हो सकते हैं, क्योंकि हम अगर आनंद को उपलब्ध होना चाहते हैं तो आनंद के अतिरिक्त, आनंद तक पहुंचने का कोई मार्ग नहीं हो सकती।

एक छोटे से गांव में सुबह ही सुबह एक बैलगाड़ी आकर रुकी। और उस बैलगाड़ी के मालिक ने उस गांव के दरवाजे पर बैठे हुए एक बूढ़े आदमी से पूछा, ऐ बूढ़े! इस गांव के लोग कैसे हैं? मैं इस गांव में स्थायी रूप से निवास करना चाहता हूं। क्या तुम बता सकोगे, गांव के लोग कैसे हैं? उस बूढ़े ने उस गाड़ी वाले को नीचे से ऊपर तक देखा। उसकी आवाज को खयाल किया, उसने आते ही कहा, ऐ बूढ़े! वृद्धजनों से यह बोलने का कैसा ढंग है? फिर उस बूढ़े ने उससे पूछा कि मेरे बेटे, इसके पहले कि मैं तुझे बताऊं कि इस गांव के लोग कैसे हैं, मैं यह जान लेना चाहूंगा कि उस गांव के लोग कैसे थे, जिसे तू छोड़कर आ रहा है। क्योंकि उस गांव के लोगों के संबंध में जब तक मुझे पता न चल जाए तब तक इस गांव के संबंध में कुछ भी कहना संभव ही है। उस आदमी ने कहा, उस गांव के लोगों की याद भी मत दिलाओ, मेरी आंखों में खून उतर आता है। उस गांव जैसे दुष्ट, उस गांव जैसे पापी, उस गांव जैसे बुरे लोग जमीन पर कहीं भी नहीं हैं। उन दुष्टों के कारण ही तो मुझे

वह गांव छोड़ना पड़ा है। और किसी दिन अगर मैं ताकत इकट्ठी कर सका तो उस गांव के लोगों को मजा चखाऊंगा। उस गांव के लोगों की बात ही मत छेड़ो। उस बूढ़े ने कहा, मेरे बेटे, तू अपनी बैलगाड़ी आगे बढ़ा। मैं सत्तर साल से इस गांव में रहता हूं, मैं तुझे विश्वास दिलाता हूं, इस गांव के लोग उस गांव के लोगों से भी बुरे है। मैं अनुभव से कहता हूं। इस गांव से बुरे जैसे आदमी तो कहीं भी हनीं हैं। अगर तू यहां रहेगा तो पाएगा कि उस गांव के लोगों से यह गांव और भी बदतर है। तू कोई गांव खोज ले। जब उसने बैलगाड़ी बढ़ा ली तो उस बूढ़े ने कहा, और मैं जाते वक्त तुझसे यह भी कहे देता हूं, कि इस पृथ्वी पर कोई भी गांव तुझे नहीं मिल सकता, जिस गांव में उस गांव से बुरे लोग न हों। लेकिन वह आदमी तो जा चुका था।

वह गया भी नहीं था कि एक घुड़सवार आकर रुक गया और पूछा कि इस गांव के लोग कैसे है? मैं भी इस गांव में ठहर जाना चाहता हूं। उस बूढ़े ने कहा, बड़े आश्चर्य की बात है! अभी-अभी एक आदमी यही पूछकर गया है। लेकिन मैं तुमसे भी पूछना चाहूंगा कि उस गांव के लोग कैसे थे, जहां से तुम छोड़कर आए हो। उस घुड़सवार की आंखों में कोई जैसे रोशनी आ गई। उसके प्राणों में जैसे कोई गीत दौड़ गया। जैसे किसी सुगंध उसकी श्वासें भर गयीं और उसने कहा, उस गांव के लोगों की याद भी मुझे खुशी की आंसुओं से भर देती है, इतने प्यारे लोग हैं। पता नहीं, किस दुर्भाग्य के कारण मुझे वह गांव छोड़ना पड़ा। अगर कभी सुख के दिन वापस लौटेंगे तो मैं वापस लौट जाऊंगा उसी गांव में, वही गांव मेरी कब्र बने, यही मेरी कामना रहेगी। उस गांव के लोग बड़े भले हैं। इस गांव के लोग कैसे हैं? उस बूढ़े ने उस जवान आदमी को घोड़े से हाथ पकड़कर नीचे उतार लिया, उसे गले लगा लिया और कहा, आओ, हम तुम्हारा स्वागत करते है। उस गांव के लोगों को मैं भली भांति जानता हूं। सत्तर साल से जानता हूं। इस गांव के लोगों को तुम उस गांव के लोगों से बहुत भला पाओगे। ऐसे भले लोग कहीं भी नहीं है।

आदमी जैसा होता है, पूरा गांव वैसा ही उसे दिखायी पड़त है। आदमी जैसा होता है, पूरा जीवन उसे वैसा ही प्रतीत होता है। आदमी जैसा होता है संसार उसे वैसा ही मालूम होने लगता है। जो लोग भीतर दुख से भरे हैं और जिनकी जीवन दृष्टि अंधेरी है वे लोग कहते हैं कि जीवन दुख है, जीवन अंधकार है, जीवन माया है। ये घोषणाएं धार्मिक आदमी की घोषणाएं हैं। यह उन लोगों की घोषणाएं हैं--जीवन की निंदा की, जीवन की कुरूपता की, जीवन की पीड़ा की घोषणाएं उन लोगों की घोषणाएं हैं जिन्होंने आनंद के भाव को खो दिया है; जीवन को लोगों की घोषणाएं हैं जिन्होंने आनंद के भाव को खो दिया है; जीवन को देखने की जिनकी क्षमता खो गयी है। जो उनके भीतर है वही वह पूरे जीवन पर फैला कर देख सकते हैं। जो उन्हें दिखाई पड़ रहा है वह उनके अंतर्भाव का ही प्रोजेक्शन है, वह उनका ही प्रक्षेपण है। लेकिन इन लोगों ने पिछले तीन हजार वर्षों तक धर्म को दिशा दी इसलिए धर्म विकृत हुआ, धर्म मार्गच्युत हुआ। और सारी मनुष्य जाति धीरे-धीरे अधार्मिक होती चली गई।

मनुष्य जाति को अधार्मिक बनाने वालों में उन लोगों का हाथ नहीं है जिन्हें हम नास्तिक कहते हैं, जिन्हें हम अधार्मिक कहते हैं। मनुष्य जाति को अधार्मिक बनाने वालों में उनका हाथ है जिन्होंने जीवन की निंदा की, जिन्होंने जीवन को बुरा कहा, जिन्होंने जीवन को दुख और पीड़ा कहा और जिन्होंने जीवन से ही छुटकारे को ही धर्म का लक्ष्य बनाया। धर्म का लक्ष्य जीवन से छुटकारा नहीं है, धर्म का लक्ष्य तो और परिपूर्ण जीवन को उपलब्ध करना है। धर्म का लक्ष्य जीवन से भाग जाना नहीं है, धर्म का लक्ष्य तो उस जीवन को उपलब्ध करना है, जिसका फिर कोई अंत नहीं होता है। धर्म तो परम जीवन की दिशा है। और धर्म, दुख के भाव से पैदा नहीं होता। दुख के भाव से कभी भी कोई स्वास्थ्य चीज पैदा नहीं होती है। दुख के भाव हमेशा अस्वस्थ दृष्टियां होती हैं--रुग्ण और बीमार और विक्षिप्त।

आनंद के भाव से जीवन और जीवन के स्वस्थ अनुभव, जीवन का सौंदर्य और जीवन का सत्य और जीवन का शिवत्व उपलब्ध होता है। इसलिए आज के दिन तीसरे सूत्रों में मैं आपसे कहना चाहता हूं, अगर जीवन को धार्मिक बनाना है तो दुख के भाव को छोड़ देना होगा और आनंद के भाव को जगह देनी होगी।

दुख का भाव क्या है, और आनंद का भाव क्या है? किस भांति हमारे मन में दुख के भाव को धीरे-धीरे बिठाया गया और किस भांति हमारे मन में आनंद का भाव तिरोभूत हो गया। यह सब समझ लेना जरूरी है।

पहली बात--एक बड़े रहस्य की बात, अगर मैं एक फल लेकर आपके पास आऊं, बहुत सुंदर फूल लेकर आपके पास आऊं, एक बहुत सुंदर फूल लेकर आपके पास आऊं, एक गुलाब का फूल लेकर आप के पास आऊं और अगर आप जीवन को दुख से दुखने के आदी हो गए हैं, और मैं आपसे कहूं कि कितना सुंदर फूल है! आप कहेंगे छोड़ो भी। यह फूल सुंदर नहीं हो सकता, इस फूल में इतने कांटे होते हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं। यह फूल सुंदर कैसे हो सकता है? गुलाब सुंदर कैसे हो सकता है? गुलाब में कितने कांटे हैं! कांटे देखो और कांटों की गिनतियां करो। तो करोड़ कांटे हैं तब कहीं एक फूल है। फूल सुंदर नहीं हो सकता लेकिन अगर आप आनंद के भाव में दीक्षित हो गए हैं तो मैं एक गुलाब का कांटा भी लेकर आपके पास आऊं तो आप कहेंगे, धन्य है यह कांटा क्योंकि इस कांटे के बीच यह गुलाब का फूल पैदा होता है। तो आप कहेंगे, यह कांटा भी कांटा नहीं हो सकता क्योंकि यह गुलाब का कांटा है।

एक दुखी व्यक्ति देखता है, हजारों कांटों की गिनती कर लेता है। और तब कहता है कि इतने कांटे इतने कांटे, कि एक फूल की कीमत नहीं है कोई। एक फूल का--हो या न हो, बराबर है। लेकिन आनंद के भाव से देखने वाले दिखाई पड़ता है। कितनी अदभुत है यह दुनिया! जहां इतने कांटे हैं वहां एक फूल भी पैदा होता और जब कांटों में फूल पैदा हो सकता है तो कांटे हमारे देखने के भ्रम होंगे क्योंकि जिन कांटों के बीच फूल पैदा हो जाता है वे कांटे भी फूल सिद्ध हो सकते हैं। जो कांटों की गिनती करता है उसके लिए फूल भी कांटा दिखायी पड़ने लगता है और जो फूल के आनंद को अनुभव करता है उसके लिए धीरे-धीरे

कांटे भी फूल बन जाते हैं। एक दुखी और निराश और उदास चित्त से अगर हम पूछें कि आनंद के भाव में डूबे आदमी से हम पूछें कि कैसी पायी तुमने दुनिया? वह कहेगा बड़ी अदभुत थी। दो उजाले से भरे दिन होते थे, तब बीच में एक छोटी सी अंधेरी रात होती थी। रात में भी है, दिन भी हैं। कांटे भी हैं फूल भी हैं। लेकिन हम क्या देखते हैं, हमारी दृष्टि क्या है इस पर पूरी की पूरी जीवन की दिशा और जिन का आयाम। निधार्रित होगा। और आश्चर्य तो यह है कि हम जो देखना शुरू करते हैं, धीरे धीरे उसके विपरीत जो था उसी में परिवर्तित होता चला जाता है। वह भी उसी में परिवर्तित होता चला जाता है। कांटे फूल बन सकते हैं। फूल कांटे बन सकते हैं। हमारी दृष्टि पर निर्भर है कि हम किस भांति देखना शुरू करते हैं।

एक अंधेरी रात में एक गरीब फकीर के झोपड़े पर एक चोर घुस आया उसने आकर द्वार पर धक्का दिया। वह गरीब फकीर का झोपड़ा था, द्वार पर कोई ताला नहीं लगा था, न सांकल बंद थी घरों के ताले और सांकलें हम इसलिए थोड़ी बंद करते हैं कि बाहर चोर है, बल्कि इसलिए कि हमारे भीतर चोर बैठा हुआ है, उससे हम हमेशा सचेत है। वह गरीब फकीर था, उसे चोरों का कोई खयाल भी न था, द्वार अटका था धक्का दिया, चोर भीतर घुस गया। चोर घबड़ा गया। आधी रात थी, उसे पता न था कि घर का मालिक जागता होगा। लेकिन वह फकीर बैठकर किसी को चिट्ठी लिख रहा था। उस चोर ने घबड़ाहट में छुरा बाहर निकाल लिया। सामने मालिक था लेकिन उस फकीर ने कहा, मेरे भाई, थोड़ी देर बैठ जाओ। मैं चिट्ठी पूरी कर लूं, कोई जल्दी तो नहीं है? वह चोर घबड़ाहट में बैठ गया कुछ उसे सूझा नहीं कि क्या करे और क्या न करे, लेकिन छुरा सामने लिए रहा उस फकीर ने कहा, क्यों व्यर्थ हाथ थकाते हो? छुरे को भीतर रख लो। यहां छुरे की कोई भी जरूरत नहीं पड़ेगी। फिर उसने पूरी चिट्ठी की और पूछा कि कैसे आए हो क्या इरादा है? मैं क्या सेवा कर सकता हूं? तुम क्या इरादा से आए हो, मुझे पता चल जाए? उसकी सीधी, सरल, निर्दोष आंखों में उस चोर ने झांका और झूठ बोलने का साहस उसे नहीं हो सका। उसने कहा, मैं चोरी करने आया हूं, मुझे क्षमा करें।

उस फकीर ने कहा, बड़ी मुश्किल में डाल दिया तूने मुझे। अगर चोरी ही करने आना था तो पहले से खबर भेज देते। मैं कुछ इंतजाम कर रखता। यहां तो कुछ भी नहीं है। और तुम खाली हाथ लौटोगे तो जीवन भर के लिए मेरे मन में पीड़ा रह जाएगी। उसकी आंख में आंसू आ गए और उसने हाथ आकाश की तरफ उठाया और कहा, हे परमात्मा, यह दुख भी देखने को बचा था, इसका मुझे खयाल न था। एक आदमी आधी रात को आएगा। बहुत मुसीबत में होगा, तभी तो? अंधेरी रात में कौन निकलता है? और वह भी एक फकीर के झोपड़े पर चोरी करने आएगा। और मेरे पास कुछ भी नहीं है। तभी उस खयाल आया कि सुबह दो दिन पहले कोई दस रुपए भेंट कर गया था और वे आले में पड़े हैं। फिर उसने कहा, ठीक है, बहुत ज्यादा तो नहीं लेकिन कोई दो दिन पहले कुछ रुपए भेंट कर गया था और वे दस रुपए आले में पड़े हैं। अगर वे बहुत कम मालूम न पड़ें तो मेरे मित्र तुम उन्हें

उठा लो। और अब दुबारा जब भी आओ मुझे पहले से खबर कर देना, मैं कुछ इंतजाम करके रखूंगा। और ऐसी अंधेरी रातों में मत आया करो। भरे उजाले में दिन में आ जाओ। रास्ते खराब हैं, चोट खा सकते हो। भटक सकते हो पत्थर पड़े हैं मार्ग पर और यह ऊबड़-खाबड़ जगह है जहां मैं रहता हूं यह झोपड़ा गरीब फकीर का गांव के बाहर है। दिन में आ गए। उजाले में आ गए। चोट लग जाए, गिर पड़ो, हाथ-पैर टूट जाए कुछ हो जाए तो फिर मुसीबत हो सकती है।

वह चोर तो बहुत हैरान हो गया। उसे कल्पना भी न थी कि चोर के साथ कोई ऐसा व्यवहार करेगा। उसे उठते न देखकर वह फकीर उठा और दस रुपए उठाकर उसे आले में से दे दिए और कहा, ये दस रुपए हैं। अगर तुम नाराज न हो तो एक रुपया इसमें से छोड़ दो, मैं बाद में वापस लौटा दूंगा। कल सुबह ही सुबह शायद मुझे जरूरत पड़ जाए। मैं वापस लौटा दूंगा, यह उधारी रही मेरे ऊपर, वह चोर कहने लगा, इसमें इधारी की क्या बात है? सब आपका है। उस फकीर ने कहा, अगर मेरा ही कुछ होता तो मैं फकीर ही क्यों होता। मेरा कुछ नहीं है इसलिए तो मैं फकीर हो गया। अब उधार है, सब चोरी है। जो भी जिसके पास है वह उधार है। और जो भी जिसके पास है, सब चोरी है। सब संपत्ति चोरी है क्योंकि कोई आदमी कुछ भी लेकर नहीं आता और कोई आदमी कुछ भी लेकर नहीं जाता मेरा कुछ भी नहीं है। कल सुबह जरूरत पड़ जाएगी, इसलिए रोक रखता हूं। फिर वापस लौटा दूंगा।

वह एक रुपया छोड़ कर चोर भागा। वह घबड़ा गया था बहुत इतना वह कभी किसी से नहीं घबड़ाया। क्योंकि जिनसे मिला था वह भी उसी तरह के लोग थे जिस तरह का यह आदमी था। कोई छोटा चोर है, कोई बड़ा चोर है। जिनसे भी मुलाकात हुई थी वे एक ही जाति के लोग थे। यह आज पहली दफा एक अनूठे और अजनबी आदमी से, स्ट्रेंजर से मिलना हो गया था, जिसको समझना मुश्किल था। बहुत घबड़ा गया था। वह भागने लगा दरवाजे से निकल कर। उस साधु ने कहा कि रुको। दरवाजा तुमने खोला था, कम से कम उसे बंद कर जाओ। किसी का दरवाजा खोले तो बंद कर दिया करो! दरवाजा बंद कर दो क्योंकि रुपए कल तुम्हारे खत्म हो जाएंगे लेकिन द्वार बंद करके तुम जो प्रेम मेरी तरफ प्रकट कर जाओगे वह आगे भी काम पड़ सकता है। उस चोर ने जल्दी से दरवाजा बंद किया। उस फकीर ने उसे धन्यवाद दिया कि धन्यवाद मेरे मित्र। जमाने बहुत बुरे हो गए हैं, कौन किसका दरवाजा बंद करता है!

वह चोर चला गया। एक वर्ष बाद वह चोर किसी दूसरी चोरी में पकड़ा गया उस पर मुकदमा चला। उस पर और चोरियां थी उन्हीं चोरियों में पुलिस ने यह भी पता लगाया कि एक रात उसने गांव बाहर जो साधु है उसके झोपड़े पर भी चोरी की थी। चोर बहुत घबड़ाया हुआ था। उस साधु को भी अदालत में बुलवाया गया। चोर बहुत डरा हुआ था। जब उस साधु ने इतना भी कह दिया कि हां, इस आदमी को मैं पहचानता हूं यह एक रात आया था तो किसी और प्रमाण की जरूरत नहीं रह जाएगी। वह इतना प्रसिद्ध आदमी था। उसका एक शब्द कि यह आदमी चोरी करने आया था, काफी था सब प्रमाण पूरा हो जाएगा। चोर बहुत डरा हुआ था।

फिर वह साधु आया। न्यायाधीश ने उससे पूछा कि तुम इस आदमी को पहचानते हो? उस साधु ने कहा, भलीभांति। यह तो मेरे पुराने दोस्त हैं, इन्हें मैं अच्छी तरह जानता हूं। चोर घबड़ाया। उस न्यायाधीश ने कहा,कभी यह तुम्हारे यहां चोरी करने आया था? उस साधु ने कहा, कि नहीं, चोरी करने तो यह कभी भी नहीं आया। हां दस रुपए जरूर मैंने इसे भेंट किए थे लेकिन वह चोरी नहीं थी, मैंने भेंट किया था। एक रुपया उसमें से अब भी मेरे ऊपर उधार है, वह मैं ले आया हूं उसको एक रुपया मुझे देना है। उधारी मेरी ऊपर है। और यह आदमी तो बहुत प्यारा है। मैंने इसे रुपए भेंट किए थे, इसने मुझे धन्यवाद दे दिया था, बात समाप्त हो गई थी। इसका चोरी से क्या संबंध है? वह न्यायाधीश बहुत हैरान हो गया। उसने कहा कि तुम क्या कहते हो? यह आदमी तुम्हारे घर चोरी करने गया था। उस फकीर ने कहा, अब से मेरे भीतर का चोर मर गया, मुझे कोई चोर दिखायी नहीं पड़ता है। मुझे माफ करें, किसी चोर को पूछें तो वह इसकी चोरी के बाबत कुछ बता सकेगा। मेरे भीतर का चोर जब से मर गया, मुझे कोई चोर नहीं दिखाई पड़ता है।

जीवन वैसा ही दिखाई पड़ता है जो हमारे भीतर है। लोग मुझसे आकर पूछते हैं, ईश्वर है? ईश्वर कहां है? मैं उनसे कहता हूं, ईश्वर नहीं है, ईश्वर नहीं हो सकता, क्योंकि तुम्हारे भीतर आनंद का भाव नहीं है। वह तो आनंद के भाव में देखी गयी सत्ता है। यही जीवन, यह पौधे, यही पशु, यही पक्षी, यही मनुष्य, यही सब कुछ जिस दिन आनंद के भाव से देखा जाता है तो परमात्मा हो जाता है। संसार और परमात्मा दो नहीं हैं, एक ही अस्तित्व को दो ढंग से देख जाने पर--दुख के ढंग से देखे जाने पर संसार है, आनंद के ढंग से देखे जाने पर परमात्मा है।

तो जिन लोगों ने हमें यह सिखा दिया है जीवन दुख है, बुरा है, असार है, छोड़ो भागो, जीवन से हटो, जीवन की सारी धाराएं तोड़ दो, सब खंडित कर दो, जीवन के सेतु अपने बीच सब तोड़ दो, सेतु दो। जिन लोगों ने यह सिखाया वे लोग सोचते रहे होंगे कि मनुष्य जाति को परमात्मा की ओर ले रहे हैं, लेकिन वे ही लोग मनुष्य जाति को परमात्मा से वंचित करने का कारण बन गए हैं। उन्होंने किस भांति सिद्ध कर दिया है कि जीवन दुख है?किसी भी चीज को व्यर्थ सिद्ध करने का सीक्रेट है, एक राज है, एक रास्ता है। और एक ही रास्ता है किसी भी चीज को व्यर्थ सिद्ध कर देन का। और जिस आदमी को वह तरकीब हाथ में आ जाए वह किसी भी चीज को व्यर्थ सिद्ध कर सकता है। वह तरकीब है: विश्लेषण, वह तरकीब है एनेलिसिस।

मैं एक गांव में गया। एक बहुत सुंदर जल प्रपात था वहां। पहाड़ से एक बहुत खूबसूरत नदी गिरती है। चांदनी रात में जिन मित्र के घर मैं मेहमान था, वे अपनी कार में मुझे लेकर उस पहाड़ी पर गए। रास्ता। थोड़ी दूर ही पहले खत्म हो जाता; फिर थोड़ी दूर पैदल जाना पड़ता था। पूर्णिमा की रात थी और उस नदी का पहाड़ से गिरना और उसका गर्जन दूर तक सुनायी पड़ता था। हवाएं ठंडी हो गई थी और उस चांदनी रात में वह नदी एक अदभुत आकर्षण तरह हमें खींच लिए जाती थी। हम गाड़ी से नीचे उतरे। गाड़ी को जो ड्राइवर साथ

लाया था वह गाड़ी के भीतर ही बैठा रहा। मैंने अपने मित्र को कहा, आप अपने ड्राइवर को भी बुला लें। मैंने उस ड्राइवर को आवाज दी कि दोस्त तुम भी आ जाओ। उसने कहा, क्या खाक रखा है वहां? कुछ पत्थर पड़े हैं, और पानी गिरता है, और वहां कुछ भी नहीं है। और वह ड्राइवर कहने लगा, मैं तो हमेशा हैरान होता हूं कि लोग क्या देखने आते हैं। वहां कुछ भी नहीं है साहब, थोड़े से पत्थर पड़े हैं और पानी गिरता है।

यह ड्राइवर धर्म गुरु हो सकता था। उसने जल प्रपात को पूर्णिमा की रात को सौंदर्य को तोड़कर एनालिसिस करके दो टुकड़ों मग रख दिया कि वहां पत्थर पड़े हैं और कुछ पानी गिरता है। वहां कुछ भी नहीं है। एक कवि देखता है फूल में न मालूम किस सौंदर्य की प्रतिमा को। एक कवि देखता है फूल में न मालूम किस अनुभूति को, न मालूम कौन से द्वार खुल जाते हैं, न मालूम किस अज्ञात लोक में वह प्रविष्ट हो जाता है। और जाकर पूछें किसी वनस्पति शास्त्री को, वह कहेगा, क्या रखा है उस फूल में? कुछ थोड़े से केमिकल्स, कुछ थोड़े से रसायन, कुछ थोड़ा-सा खनिज। और कुछ भी नहीं हैं उस फूल में क्यों पागल हुए जाते हो? किसकी कविता लिखते हो एक छोटे से केमिस्ट्री के फार्मूले में सब जाहिर हो जाता कि फूल में क्या है। फूल में कुछ भी नहीं है। उसने एनासिलिस कर दी, उसने तोड़कर बता दिया कि फूल में इतने-इतने रसायन हैं, इतना-इतना खनिज है, इतनी-इतनी चीजें गीली हैं, और फूल में कुछ भी नहीं है।

मैं किसी को प्रेम करूं और पहुंच जाऊं किसी शरीरशास्त्री के पास। वह कहेगा, क्या रखा है इस शरीर में? इसमें कुछ भी नहीं है, कुछ हड्डियां हैं, कुछ मांस है कुछ मज्जा है, कुछ खून है, और कुछ भी नहीं है पहुंच जाऊं किसी रासायनिक के पास तो वह कहेगा, एक आदमी के शरीर में मुश्किल से चार रुपए बाहर आने का सामान होता है, इससे ज्यादा का नहीं। कुछ लोहा होता है, कुछ केल्शियम होता है, कुछ फलां होता है, कुछ ढिकां होता है। अगर बाजार में खरीदने जाएं तो चार-चार रुपए में सब मिल जाता है। क्या परेशान हो रहे हैं इसको प्रेम करने के लिए? शरीर में कुछ भी नहीं है। यह चार-पांच रुपए का सामान है, बाजार से खरीद लें, एक पेटी में रख लें। खूब प्रेम करें। वह बात बिलकुल ठीक कह रहा है। उसने आदमी के शरीर का विश्लेषण करके बता दिया कि इतना लोहा है, इतना फलां है, इतना यह है। इसमें ज्यादा कुछ है नहीं। क्यों परेशान हुए जाते हैं? इसमें प्रेम करने की बात कहां है। उसने एनालिसिस कर दी, उसने चीजों को तोड़ कर रख दिया।

एक बड़ी प्यारी कविता है उसे सुनते हैं तो प्राणों के तार झनझना जाते हैं। उसे सुनते हैं तो प्राणों की वीणा बज उठती है। लेकिन पहुंच जाएं किसी व्याकरण जानने वाले के पास, किसी ग्रेमेरियन के पास। वह कहेगा क्या रखा है इसमें! कुछ शब्दों का जोड़ है। एक-एक शब्द तोड़कर रख देगा। मार्क टर्वेन एक अपने मित्र उपदेशक का भाषण सुनने गया था। वह उपदेशक बहुत अदभुत था। उसकी वाणी में कुछ जादू था, कोई बात थी। सुनने वालों के प्राण किसी दूसरे स्तर पर उठ जाते थे। एक डेढ़ घंटे तक मार्क टर्वेन उसे सुनता रहा। लोग मंत्र-मुग्ध थे, फिर मार्क टर्वेन बाहर निकला। उसके मित्र उपदेश ने पूछा कि कैसा लगा?

मैंने जो कहा, वह कैसा लगा? मार्क टर्वेन ने कहा कुछ भी नहीं। सब गड़बड़ था और सब उधार था। एक किताब मेरे पास है, उसमें यह सब लिखा हुआ है जो सब तुमने बोले। एक-एक शब्द लिखा हुआ है उसमें। बड़े बेईमान आदमी मालूम होते हो, इसमें तुमने कुछ भी नहीं बोला। मेरे पास एक किताब है, उसमें सब लिखा है। वह बहुत हैरान हो गया। उसने कहा, कौन-सी किताब, जिसमें यह लिखा हुआ है एक-एक शब्द? मैं तुमसे शर्त बदलता हूं क्योंकि मैं तो आज तक कोई किताब पढ़ी नहीं। मैंने जो कहा है, वह मैंने कहा है। मार्क टर्वेन ने उससे एक-एक हजार रुपए की शर्त बद ली। वह उपदेशक बहुत हैरान था कि यह कैसे हो सकता है। दूसरे दिन मार्क टर्वेन ने एक डिक्शनरी उसके पास भेज दी कि इसमें सब शब्द लिखे हुए हैं। जो भी तुम बोले इसमें सब लिखा हुआ है। एक-एक शब्द लिखा हुआ है। पढ़ लो और एक हजार रुपए मुझे भेज दो।

उसने विश्लेषण कर दिया। मार्क टर्वेन ठीक कहता है। डिक्शनरी में लिखा हुआ है। सभी शब्द लिए हुए हैं। जो भी दुनिया में कोई बोल सकता है, सब लिखे हुए हैं। लेकिन बोलना शब्दों का जोड़ नहीं है और न आदमी हड्डियों और मांस मज्जा का जोड़ है न फूल रसायन और खनिज का जोड़ है और न कविता व्याकरण के नियमों का जोड़ है। जिंदगी चीजों का जोड़ नहीं है, जोड़ से कुछ ज्यादा है और वह ज्यादा उसको दिखाई पड़ता है जो चीजों को तोड़ना नहीं जोड़ता है। उस ज्यादा को देख लेना ही धार्मिक मनुष्य का अनुभव है।

पिकासो का नाम सुना होगा। एक अदभुत चित्रकार है। एक पेंटर अमरीकी करोड़ पति ने अपना एक चित्र बनवाया पिकासो से। करोड़पति था। उसने यह उचित न समझा कि दाम पहले तय कर ले। कितना मांगेगा ज्यादा से ज्यादा? फिर उसके पास पैसे की कोई कमी भी न थी। पिकासो ने भी दाम तय करने की बात कोई ठीक न समझी। चित्र दो साल में बना। वह करोड़पति बार-बार पूछवाता रहा कि चित्र बन गया कि नहीं। पिकासो ने कहा थोड़ा धैर्य रखिए एकदम आसान बात नहीं है। भगवान भी आपको बनाता है तो नौ महीने लग जाते हैं। लेकिन मैं तो भगवान नहीं हूं, मैं तो एक साधारण मनुष्य हूं, मैं बना रहा हूं आपको फिर से दुबारा। दो चार वर्ष लग जाए तो कोई कठिन नहीं है। बड़ा हैरान था वह करोड़पति कि क्या पागलपन की बातें कर रहा है! मेरा चित्र बना रहा है तो क्या दो-चार वर्ष लगाएगा फिर? दो वर्ष बाद उसने खबर भेजी कि चित्र बन गया, आप आ जाएं और चित्र ले जाएं। वह करोड़पति लेने आया। चित्र सुंदर बना था, उसे बहुत पसंद पड़ा। उसने पूछा, इसके दाम? पिकासो ने कहां, पांच हजार उसने कहा, क्या? पांच हजार डालर। थोड़ा सा कैनवास और थोड़े से रंग, इसका दाम पांच हजार डालर? क्या मजाक करते हैं? इस कैनवास के टुकड़े को और इन रंगों की इतनी कीमत? दस पांच रुपए बाजार से मिल जाएगा यह सब सामान। उसने एनालिसिस कर दी। उसने विश्लेषण कर दिया कि इतनी-इतनी चीजों से मिलकर बना है। इसको दमा पांच हजार डालर! यह कोई बात है।

पिकासो ने अपने सहयोगी को कहा कि जो भीतर, इससे बड़ा कैनवस का टुकड़ा ले आ और रंग की पूरी की पूरी टयूब ले आ और इनका दे दे। और जितने दाम ये देते हों दे जाएं।

उसका साथी गया, वह एकदम कैनवस ले आया और रंग की भरी हुई टयूब ले आया, लाकर सामने रख दिया और कहा, अब आपकी जो मर्जी हो--दस पांच डालर, वह दे जाएं और ले जाएं। यह आपका पोर्ट्रेट रहा। वह करोड़पति कहने लगा, क्या मजाक करते हैं? रंग और कैनवस को ले जाकर मैं क्या करूंगा?

पिकासो ने कहा, फिर याद रखें, चित्र रंग और कैनवस का जोड़ नहीं है, उन दोनों से कुछ ज्यादा है। रंग और कैनवस के द्वारा हम उसको उतारते हैं जो रंग और कैनवस नहीं है। रंग और कैनवस सिर्फ अपर्चुनिटी है, अवसर है। उनके माध्यम से हम उनको प्रकट करते हैं जो कि रंग और कैनवस के बाहर है और रंग और कैनवस से जिनका कोई संबंध भी नहीं है। हम दाम उनके मांगते हैं, और अब पांच हजार में निपटारा नहीं होगा, पचास हजार देते हों तो ठीक है। अब यह बिक्री नहीं होगा। पचास हजार डाल उस चित्र के दिए गए। वह उसे पांच डालर की चीज न मालूम पड़ती थी, वह पचास हजार डालकर की कैसे दिखायी पड़ी? दिखाई पड़ती इसलिए कि अगर चीजों को हम तोड़कर देखें तो दो कौड़ी की हो जाती हैं और उन्हें जोड़कर देखें तो उनमें एक अदभुत अर्थ प्रकट हो जाता है।

जीवन में अगर दुख और निसार और असार साधना हो तो तोड़कर देख लें पूरी जिंदगी को, सब व्यर्थ हो जाएगा। और अगर जिंदगी में परमात्मा को खोजना हो तो एनालिसिस नहीं सिंथीसिस चीजों को जोड़कर देखना है। और ग्रेटर टोटलिटी में, और बड़ी समग्रता में, और बड़ी समग्रता में चीजों को जोड़कर देखना है। अंततः एक पूरी इकाई में जिस दिन सारी चीजों को जोड़कर देखी जाती है उस दिन परमात्मा प्रकट हो जाता है।

तो दुख का मार्ग है विश्लेषण और आनंद का मार्ग है संश्लेषण। केवल वे ही लोग आनंद को उपलब्ध होते हैं जो संश्लेषण की विधि में दीक्षित हो जाते हैं। लेकिन हम सारे लोग विश्लेषण की विधि में दीक्षित किए गए हैं। पहले धर्मों ने विश्लेषण सिखाया, फिर पीछे विज्ञान ने विश्लेषण सिखाया। और सश्लेषण की कोई शिक्षा न रह गयी कि हम चीजों को जोड़कर देख सकें, हम चीजों को इकट्ठा होकर देख सकें, हम चीजों को उनके इकट्ठेपन में देख सकें, उनके टुकड़े-टुकड़े अंशों में नहीं, खंडों में नहीं। जीवन में जो भी श्रेष्ठ है वह अखंड में है। और जीवन में जो भी व्यर्थ है वह खंडों में है। किसी भी चीज को व्यर्थ करना हो खंडों में तोड़ लें और देख लें, वह व्यर्थ हो जाएगी। और किसी भी चीज को सार्थक करना हो तो उसे खंडन में देखें और वह सार्थक हो जाएगी।

आनंद की दृष्टि, आनंद की साधना जीवन के सब खंडों को अखंड में देखने की साधना है। टुकड़ों में, पार्ट्स में होल को देखने की साधना है। और दुख की दृष्टि सब अखंडों को, टुकड़ों में तोड़ने की साधना है।

तीसरा सूत्र--अंतिम यह बात, जीवन की क्रांति के लिए आपको कहना चाहता हूं, कि जीवन को संश्लेषण में देखें। जोड़ें और देखें। चीजों को ज्यादा से ज्यादा बड़े जोड़ में देखें और तब आप पाएंगे, कि रंग और कैनवस के ऊपर जो है उसकी झलक मिलनी शुरू हो गयी। और तब आप पाएंगे, शब्द और व्याकरण के जो ऊपर है उस काव्य की अनुभूति आनी शुरू हो

गयी। और तब आप पाएंगे, खनिज और रसायन के जो ऊपर है, उस फुल का दर्शन शुरू हो गया। और तब आप पाएंगे, हड्डी मांस और मज्जा के जो ऊपर है, उस आत्मा की किरणें उतरने लगीं। और तब आप पाएंगे कि मिट्टी पत्थर और आकाश में जो ऊपर है, उस परमात्मा के द्वार भी खुलने शुरू हो गए हैं।

यह द्वार जब भी चलता है, ऐसे ही खुलता है। और यह द्वार जब भी बंद होता है तो ऐसे ही बंद हो जाता है। द्वार हम बंद किए बैठे हैं। हम अपनी पीठ किए बैठे हैं उस तरफ जहां मार्ग हो सकता है और उस तरफ आंखें किए बैठे हैं जहां मार्ग नहीं हो सकता है। इसलिए हम दुखी हैं, इसलिए हम पीड़ित हैं, इसलिए हम परेशान है। और इस परेशानी में, इस दुख में, इस पीड़ा में, इस अशांति में हम किन्हीं भी द्वारों पर भीख मांगने खड़े हो जाते हैं। हमें कोई रास्ता बताओ। और रास्ता बताने वाले लोग मिल जाते हैं। लेकिन मजा यह है ये वे ही लोग हैं रास्ता बताने वाले, जिसने ये सारी की सारी समस्या खड़ी कर दी है। वह फिर यही समझाते हैं कि जीवन असार है। जब तब जीवन को असार न समझोगे, शांत नहीं हो सकते। वह समझाते हैं, जीवन दुख है, छोड़ो जीवन को, हटो जीवन से। संन्यासी की तरफ चलो, छोड़ो सब। पलायन करो। भागो जीवन से। तभी शांति मिलेगी। जीवन में कभी किसी को शांति मिली है? जीवन को छोड़ने से शांति मिलती है। संसार को छोड़ो तो शांति मिलती है। शरीर को छोड़ो तो शांति मिलती है। और छोड़ो तो इस समझाने के लिए व्यर्थ है, जानो। दुख है, पीड़ा है, असार है, यह जानो।

मैंने सुना है एक रात स्वर्ग के एक रेस्तरां में बड़ा मजा हो गया। इधर जमीन पर देख-देख कर देवताओं ने भी रेस्तरां वगैरह खोल लिए होगे स्वर्ग में। क्योंकि देवता आदमी से पीछे रह जाए, इसका कोई कारण तो नहीं है। एक रेस्तरां है स्वर्ग का। लाओत्से, चीन का एक अदभुत विचारक बुद्ध को हाथ पकड़े के उस रेस्तरां में लिए चला जा रहा है। पीछे-पीछे कन्फयूसियस भी चला आ रहा है। वे तीनों जाकर टेबल पर बैठे गए हैं। बुद्ध तो आंखें बंद किए हैं, वे कहते हैं, मुझे बाहर जाने दो। मुझे कुछ रस रंग नहीं आता इन सब बातों में। वहां अप्सराएं नीचे चली जाती है। बुद्ध कहते हैं, मैंने बहुत अप्सराएं देखीं, मैंने बहुत नाच देखे, उन सबको, छोड़कर ही मैं जंगल भाग गया। मुझे नहीं देखने हैं ये सब। वे आंख बंद किए बैठे हैं। कन्फूसियस आधी आंख खोलकर देख रहा है। क्योंकि कन्फयुसियस कहता था, अति एक्सट्रीम पर कभी नहीं होना चाहिए। न पूरी आंख खोलो, न पूरी आंख बंद करो। आधी से देखते रहो, आधी बंद भी रखो। जरूरत पड़े तो बंद में भी सम्मिलित हो जाओ, जरूरत पड़े तो खुले में भी सम्मिलित हो जाओ। वह आधी आंख से नाच भी देखे चला जाता है। आधी आंख से वह ध्यान में भी बना चला जाता है। लेकिन लाओत्से तो पूरा डांवाडोल हुआ जा रहा है। टेबल ठोक रहा है, उसके पैर थिरक रहे हैं। वह तो नाच में लीन हो गया है, वह तो आनंद से भर गया है।

और तभी एक अप्सरा नाचती हुई आती है। वह हाथ में एक जीवन के रास की प्याली लिए हुए है। जीवन रस की प्यासी भरे हुए है। और वह आकर कहती है, जीवन रस लेंगे? जीवन

रस पीएंगे? बुद्ध ने तो बिलकुल पीठ फेर ली और आंख बंद कर ली और कहा, जीवन का नाम न लेना। जीवन तो दुख है, जीवन तो पीड़ा है। जीवन तो असार है, नाम न लें यहां जीवन का। यह जीवन ही बंधन है। हटो यहां से दूर। कहां कि मुझे बाहर ले चलो, मैं यहां नहीं बैठना चाहता हूं। जहां जीवन की चर्चा होती है, वहां भी नहीं रुकना चाहता हूं। मुझे नहीं पीना है। मैंने बहुत देख लिया है, जीवन बहुत कड़वा है। कन्फशूशिस आधी आंखों से देख भी रहा है, आधी आंखें बंद भी किए है। उसने कहा, एक बूंद तो कम से कम लेकर देख लूं। क्योंकि बिना पीए कह देना कि कड़वा है, अति है, एक्सट्रीम है। पूरा पी लेना दूसरा अति है। एक बूंद ले लेना गोल्डन मीन है। बीच का मार्ग है, मध्य मार्ग है। एक घूंट तो कम से कम लेकर देख लूं। उसने एक घूंट उस जीवन रस की प्याली से पिया और कहा कि नहीं-नहीं कोई सार नहीं है। न तो आनंद पूर्ण है, न दुखपूर्ण है। उसने कहा, न आनंदपूर्ण है, न दुखपूर्ण है। कोई सार नहीं है, कोई असार भी नहीं है। पियो तो ठीक न पियो तो ठीक। सब बराबर है। फिर उसने अपनी आधी आंखें बंद कर ली, आधी खोल लीं। और बैठ गया।

लाओत्से ने पूरी प्याली हाथ में ले ली। वैसे मुग्ध भाव से पूरे हाथ में ले लिया। उसने इतनी कृपज्ञत, और ग्रेटीटयूड से प्याली हाथ में ले ली। उसने न कुछ कहा, न कुछ बोला, न कोई वक्तव्य दिया। वह तो पूरी प्याली को पी गया। पूरी प्याली रख दी उसने नीचे और उठकर नाचने लगा। और उठकर नाचने लगा। कन्फूशियस उससे पूछने लगा कि क्या हुआ? बता। उसने कहा, जो हुआ, बताया नहीं जा सकता, लेकिन उसे केवल वे ही जानते हैं पूरे जीवन को पी लेते हैं। उसे केवल वे ही जानते हैं जो पूरे जीवन के साथ एकरस हो जाते हैं। उसे केवल वे ही जानते हैं जो पूरे जीवन में तल्लीन हो जाते हैं, पूरे जीवन में डूब जाते हैं। उसे वे नहीं जानते जो किनारे पर बैठे रहते हैं। जो जीवन की धारा में पूरी डुबकी ले लेते हैं वे ही जानते हैं। वह नाचने लगा। वह भाव-विभोर।

ये तीन दृष्टियां हो सकती है--न बुद्ध से मतलब है कोई मुझे, न कन्फयूसियस से, न लाओत्से से। यह कहानी किसी पुराण में नहीं लिखी है नहीं तो आप खोज-बीन में लग जाएं और फिर मुझे दोष देने लगें। यदि यह भविष्य में कभी कोई पुराण लिखा जाएगा तो उसमें लिखी जाएगी। यह अभी लिखी हुई नहीं है। यह दृष्टि है कि जीवन को छुओ ही मत, आंख पूरी बंद कर लो। यह दृष्टि घातक है। यह दृष्टि कभी जीवन के सत्य को नहीं जान सकती है। एक दृष्टि है, बीच में तटस्थ हो जाओ। आधी आंख खुली, आधी बंद रखो। यह उदास, उदासीन की दृष्टि है। दुखी की नहीं, उदासीन की दृष्टि है।

पहली दृष्टि पहले पत्थर तोड़ने वाले की दृष्टि है, जो कहता है, अंधे हो? देखते नहीं कि पत्थर तोड़ रहा हूं? यह दूसरी दृष्टि उदास आदमी की दृष्टि है। जो उदासी से, सुस्ती से आंखें ऊपर उठाता है और कहता है कि अपनी रोटी कमा रहा हूं। इसमें कोई आनंद का भाव है, न कोई दुख का भाव है। एक बोझिलता, एक बोर्डम, एक ऊब का भाव है। अपना काम कर

रहे हैं। यह दूसरी दृष्टि है। और एक तीसरी दृष्टि है, जीवन के पूरे रस में तल्लीन हो जाएं। वह पूरी दृष्टि है उस पत्थर तोड़ने वाले की, जो कहता है, भगवान का मंदिर बना रहा हूं।

जीसस संश्लेषण से देखा जाए तो जीवन भगवान को बनाने की एक प्रक्रिया हो जाती है। और जीवन को उसकी परिपूर्णता में जीया जाए और डूब जाए, जीवन के सारे रसों में, जीवन के सौंदर्य में, जीवन के आनंद में, जीवन के फूलों में, जीवन की सुगंध में, जीवन के संगीत में, जीवन के पूरे रस को पी लिया जाए तो फिर कोई नाच उठता है उसकी कृतज्ञता में, उसके ग्रेटीययूड में, उसके धन्यवाद में। फिर उसके हाथ उसके धन्यवाद के लिए जुड़ जाते हैं। उसके प्राण प्रार्थना से भर जाते हैं। और इस आनंद के नृत्य में उसे पहली दफे झलक मिलती है। केवल आनंद के पुलक में ही उसकी झलक मिलती है। दुखी आंख बंद किए बैठे रह जाते हैं और वंचित रह जाते है।

और जो एक इस आनंद को, जीवन की पुलक को देखने को देखने में समर्थ हो जाता है, एक किरण भी जिसके जीवन में इस आनंद की उतर जाती है, धीरे-धीरे सारा जीवन रूपांतरित हो जाता है, सब ट्रांसफार्म हो जाता है। फिर उसे कांटे नहीं रह जाते, फिर उसे फूल ही फूल हो जाते हैं। फिर उसे रातें नहीं होती, फिर उसे दिन ही दिन हो जाते हैं। फिर उसे आंसू नहीं रह जाते, फिर उसके लिए गीत ही गीत हो जाते हैं।

एक छोटी-सी घटना--और अपनी चर्चा मैं पूरी करना चाहूंगा। एक सांझ की बात है। आकाश में बादल घिर गए हैं, वर्षा के दिन आने के करीब है, एकाध दिन और, और वर्षा होगी। उमड़-घुमड़ कर बादल आने शुरू हो गए हैं। दो भिक्षु, दो संन्यासी भागे हुए जा रहे हैं एक रास्ते पर, अपने झोपड़े की तरफ। वर्षा आ रही है, अब वे चार महीने आपने झोपड़े में रहेंगे। आठ महीने वे घूमते रहते हैं, भटकते रहते हैं, रोटी मांगते रहते हैं और जीवन बांटते रहते हैं। दो कौड़ी की चीज लोगों से ले लेते हैं, शरीर को चलाते हैं और अमृत लुटाते रहते हैं। आठ महीने भागते रहते हैं गांव-गांव, रास्तों-रास्तों, किस किसी के रास्ते पर एक दिया जल जाए, कि किसी रास्ते पर फूल रख आए। फिर आठ महीने भागने के बाद चार महीने वर्षा में अपने झोपड़े पर वापस लौट आते हैं।

वे भागे चले जा रहे हैं। झोपड़ा उन्हें दिखायी पड़ने लगा है। नदी के उस पार, पहाड़ के पास उनका झोपड़ा है, लेकिन जैसे-जैसे वे निकट आते हैं, देखकर कुछ हैरान हुए जा रहे हैं। जवान भिक्षु है एक, एक बूढा भिक्षु है। जवान भिक्षु आगे है थोड़ा, बूढा पीछे है। फिर वह जवान भिक्षु देख पाता है, कि झोपड़ा तो टूटा पड़ा है, आधा झोपड़ा हवाओं में उड़ गया मालूम होता है। आधा छप्पर जमीन के पास पड़ा हुआ है। गरीब का झोपड़ा है, उसमें बड़ी लागत तो नहीं होती है। वह तो हवाओं की कृपा से बना रहता है, नहीं तो हवाएं कभी भी उसको गिरा देती। उसको कोई बल तो नहीं होता, उसका कोई अधिकार तो नहीं होता कि वह बना ही रहेगा। वह तो बना रहता है, यह चमत्कार है। जो गरीब का झोपड़ा है उसके बने रहने की कोई वजह नहीं है, कोई कारण नहीं है। हवाओं की कृपा समझें कि बना रहता है।

वह तो क्रोस से भर गया है भिक्षु, उसने लौटकर अपने बूढे भिक्षु को कहा कि देखते हैं? जिस भगवान के गीत गाते फिरते हैं हम, जिस भगवान के लिए सांसें लेते हैं, जिस भगवान के लिए जीते हैं वह भगवान इतनी भी फिकर नहीं कर सकता है कि हमारा झोपड़ा बचा ले। ऐसी ही बातों से तो अविश्वास पैदा हो जाता है। ऐसी बातों से लगता है कि नहीं हैं कोई भगवान। सब झूठी है बकवास! गांव में पापियों से महल खड़े हैं, उनमें से किसी का छप्पर नहीं गिर गया और कोई मकान नहीं टूट गया। और हम भिखारियों के मकान को तोड़ दिया तुम्हारे भगवान ने। अब रखो तुम अपने भगवान को, मुझे छुट्टी दो। बहुत हो गयी यह बकवास। भगवान-वगवान कुछ भी नहीं है। अब वर्षा में क्या होगा? वर्षा सिर पर है, बादल आकाश में घिरे हैं, घुमड़ते हैं, बिजली चमकती है। क्या होगा, अब कहां ठहरोगे? वह इतने क्रोध में हैं, कि देख भी नहीं पाया कि जब वह चिल्ला रहा है तब बूढा भिक्षु क्या कर रहा है।

जब बूढे भिक्षु ने कोई उत्तर नहीं दिया तो उसने अपनी आंखें पोंछी--क्रोध में उसकी आंखों में धुंध आ गयी है, खून आ गया है। लौटकर आंखें, खोलीं तो देखा कि वह बूढा भिक्षु हाथ जोड़े आकाश की तरफ बैठा है और उसकी आंखों से आंसू से बहे जाते हैं। न मालूम किस आनंद से झरना बहा जाता है। उसने उसे हिलाया और कहा, क्या करते हो? लेकिन वह बूढा कुछ बुदबुदा रहा है। वह कह रहा है कि हे भगवान, तेरी कृपा अनूठी है। हवाओं का क्या भरोसा, आंधियों का क्या भरोसा? वे पूरा झोपड़ा भी उड़ाकर ले जा सकती हैं। आधा बचाया तो जरूर तूने ही बचाया होगा, जरूर तूने ही बचाया होगा।

वह बुदबुदा रहा है उसके हाथ जुड़े हैं, उसकी आंखों से आंसू बहे चले जा रहे हैं, उसके चेहरे पर एक रोशनी झलकी रही है। वह यह कह रहा है, जरूर...आंधियों का क्या भरोसा! अंधी आंधियों का क्या भरोसा? पूरा झोपड़ा उड़कर ले जा सकती है। जरूर तूने रोका होगा, जरूर तूने बाधा दी होगी, नहीं तो आधा कैसे बचता? धन्यवाद! आधे झोपड़े से भी काम चल जाएगा। जब तूने समझा कि आधा हमारे लिए काफी है, तो हम कैसे समझे कि न काफी है? जरूर आधे से काम चल जाएगा। वह जवान तो क्रोध से भर गया इस बात को सुनकर और। फिर वे दोनों झोपड़े पर पहुंच गए हैं। बूढा तो ऐसे आनंदमग्न घूम रहा है झोपड़े में, जैसे झोपड़ा महल हो गया हो, जैसे मिट्टी का झोपड़ा सोने का बन गया हो, झोपड़ा टूटा पड़ा है ध्वस्त और वह जवान क्रोध से भरा हुआ है।

फिर रात उतर आयी बादल चमकने लगे और बिजलियां गरजने लगीं गौर जोर की आवाजें आने लगीं और वे दोनों सो गए हैं। जवान रात भर करवटें बदल रहा है। क्योंकि जो क्रोध घना होता जा रहा है। और ऊपर आकाश दिखाई पड़ रहा है, बिजली चमक रही हैं, पानी की बूंदें पड़ने लगीं हैं, उसका क्रोध घना होता जा रहा है। अगर उसके वश में हो, अभी भगवान मिल जाए तो उनकी गर्दन दबा दे। सारी प्रार्थनाएं वापस ले लेना चाहता है, जो उसने की। और भगवान को जो सारी प्रशंसा की वह सब तोड़ देना चाहता है। उसका मन बड़े विद्रोह से भर गया है। लेकिन बूढा गहरी शांति में सोया हुआ है। बिजली चमकती है तो

उसके चेहरे पर जो प्रकाश आता है उससे लगता है जैसे न मालूम वह किस गहरी नींद में है। शायद नींद में नहीं, वह समाधि में है। शायद वह किसी गहरे गहन में है। वह न मालूम किन गहराइयों में डूबा हुआ है।

सुबह दोनों उठते है...एक तो रात भर नहीं सोया है, दूसरा रास्ता भर सोया है। सुबह उठते ही उस जवान से फिर गालियां देनी शुरू कर दीं। वह बूढ़ा सुबह उठकर ही एक गीत लिख रहा है। वह गीत बड़ा प्रसिद्ध है। उस गीत के अर्थ बढ़े अनूठे हैं। उस गीत में वह फिर कहता है कि हे परमात्मा, तू कितना अदभुत है। हमें पता नहीं था कि आधे छप्पर में सोने का आनंद क्या है। रात बिजलियां चमकती थीं तो मेरी नींद भी उनसे आलोकित हो जाती थी। आकाश में तारे दिखायी पड़े, कभी आंख खुली तो तारे दिखाई पड़ गए हैं। नींद में मैंने कभी तारे नहीं देखे थे, और मुझे खयाल भी न था कि शांति में तारे कितने प्रतिपूर्ण मालूम होता हैं और उनसे कैसे संबंध जुड़ जाता है। दिन की रोशनी में, रात के जागरण में देखी थी तेरी प्रकृति, लेकिन नींद के मखमली पर्दे से कभी नहीं झांका था कि तेरी दुनिया इतनी अदभुत है। और अब तो मजा हो जाएगा। वर्षा आ गए है, बूंदें टपकेंगी तेरी, आधे छप्पर में हम सोए भी हरेंगे आधे छप्पर में तेरे बूंदों का संगीत भी रात भर नाचता रहेगा। और कभी आंख खुलेगी तो हम तेरी बूंदों को देख लेंगे। अगर हमें पता होता कि इतना आनंद है, तो हम तेरी हवाओं को कभी तकलीफ न देते, हम खुद ही आधा छप्पर तोड़ देने, लेकिन हमें यह पता ही नहीं था।

यह एक धार्मिक व्यक्ति की जीवन के प्रति दृष्टि है। न तो आपके मंदिर में जाने से आप धार्मिक होते हैं, न आपके मस्जिद में जाने से आप धार्मिक होते हैं, न आप गीता के चरणों में सिर रखने से धार्मिक होते हैं, और आप कुरान को सिर पर ढोने से धार्मिक होते हैं, न बुद्ध और महावीर की तस्वीरों के सामने घुटने टेकने से आप धार्मिक होते हैं। धार्मिक आदमी की तस्वीर यह है कि धार्मिक आदमी के जीवन के कांटों में फलों को देखने में समर्थ होता है, जीवन की पीड़ाओं में आनंद को देखने में समर्थ होता है। आधे उड़ गए छप्पर में आधे बचे छप्पर को देखने में समर्थ होता है।

यह धार्मिक क्रांति का तीसरा सूत्र है--आनंद का, अनुग्रह का,ग्रेटीटयूड का भाव। यह भाव जितना गहरा और विकसित होता चला जाता है उतना ही जीवन रूपांतरित होता है और उतने ही पदार्थ में उसके दर्शन होने लगते हैं जो पदार्थ नहीं। और उतने ही पार्थिव में उसकी झलक मिलने लगती है जो अपार्थिव है। फिर सीमाओं में असीम उतरने लगता और रेखाओं के बीच वह दिखायी पड़ने लगता है जो रेखाओं में बंधता नहीं है। फिर शब्दों में निःशब्द के दर्शन होता हैं और फिर सब और--सब ओर, सब दिशाओं, सबके भीतर और सबके बाहर उस एक ही ज्योति फैलनी शुरू हो जाती है और उस ज्योति में व्यक्ति स्वर्ग भी लीन हो जाता है और एक हो जाता है। जीवन के साथ यह एकता और लीनता ही मुक्ति है, जीवन के विरोध में नहीं। जीवन में डूबकर वह उपलब्ध होता है जो प्रभु है।

अंत में फिर दोहरा दूं--पहली कड़ीः विश्वास नहीं, अंधापन नहीं, विचार। दूसरी कड़ीः ज्ञान नहीं, थोथा ज्ञान नहीं, शब्दों और शास्त्रों से सीखा ज्ञान नहीं बल्कि विस्मय-विमुग्धता। और तीसरी बात...जीवन की असारता, दुख का भाव नहीं, निराशा नहीं, उदासी नहीं, अंधकार नहीं। आनंद की भावदशा अनुग्रह का भाव, धन्यवाद, कृतज्ञता मनुष्य के जीवन में क्रांति लाती है और प्रभु के मंदिर के द्वार पर उसे खड़ा कर देती है।

प्रभु करे, हम सभी प्रभु के मंदिर में पहुंच जाएं। प्रभु करे, हम पत्थर तोड़ने वाले मजदूर न हों। प्रभु करे, हम रोटी कमाने वाले मजदूर न हों। प्रभु करे, हम प्रभु के मंदिर बनाने वाले कारीगर हों।

मेरी इन बातों का इतनी शांति, इतने प्रेम से सुना उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं और सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

पूना, दिनांक १५ मार्च, १९६८ सुबह

नाचो धर्म है नाच

मेरे प्रिय आत्मन,

अपना अनुभव ही सत्य है और इसके अतिरिक्त कुछ भी सत्य नहीं है। जिस बोलने के साथ यह आग्रह होता है कि मैं कहता हूं, उस पर इसलिए विश्वास करो क्योंकि मैं कहता हूं। जिस बोलने के लिए श्रद्धा की मांग की जाती है--अंधी श्रद्धा की वह, बोलना उपदेश बन जाता है। मेरी न तो यह मांग है कि मैं कहता हूं उस पर आप विश्वास करें। मेरी तो मांग ही यही है कि उस पर भूलकर भी विश्वास न करें। न ही मेरा यह कहना है कि जो मैं कहता हूं वही सत्य है। इतना ही मेरा कहना है कि किसी के भी कहने के आधार पर सत्य को स्वीकार मत करना, और मेरे कहने के आधार पर भी नहीं।

सत्य तो प्रत्येक व्यक्ति की निजी खोज है। कोई दूसरा किसी को सत्य नहीं दे सकता। मैं भी नहीं दे सकता हूं, कोई दूसरा भी नहीं दे सकता है। सत्य दिया नहीं जा सकता, पाया जरूर जा सकता है। इसलिए मैं जो कह रहा हूं, उससे आपको कोई सत्य की दिखा दे रहा हूं, ऐसा नहीं है। फिर पूछा है कि मैं उपदेश क्यों दे रहा हूं?

न ही इसमें मुझे कोई आनंद उपलब्ध होता है कि आप जो मैं कहूं, प्रशंसा करें, उसके लिए तालियां बजाए, उसका समर्थन करें। न ही मेरा यह कोई व्यवसाय है। फिर मैं क्यों कुछ बातें कह रहा हूं। एक आदमी को दिखाई पड़ता हो कि आप जिस रास्ते पर जा रहे हैं वह

रास्ता गड्ढों में कांटों में ले जाने वाला है और आपसे कह दे कि इस रास्ते पर कांटे हैं औ रगढे हैं। वह आपको कोई उपदेश नहीं दे रहा है। वह केवल इतना कह रहा है कि जिस रास्ते से मैं परिचित हूं उस रास्ते पर उसी गड्ढे में उन्हीं कांटों कें किसी को जाते हुए देखना अमानवीय है, चुपचाप देख लेना अमानवीय है, अत्यंत हिंसक कृत्य है।

सड़क के किनारे प्रकाश के खंभे लगे हुए हैं, स्ट्रीट लाइट लगे हुए हैं। जिस आदमी ने सबसे पहले फिल्डेल्फिया में सबसे पहला रास्ते के किनारे का प्रकाश लगाया, वह थज्ञ बेंजामेन फ्रेंकलिन। तब तक दुनिया में रास्तों के किनारे कोई प्रकाश नहीं लगाए जाते थे, रास्ते अंधेरे होते थे। बेंजामेन फ्रेंकलिन ने सबसे पहले अपने घर के सामने एक बत्ती लगायी, एक कंभा लगाया। पड़ोस में लोगों ने कहा, क्या तुम यह दिखलाना चाहते हो कि तुम्हारे पास पैसे है? क्या तुम यह दिखलाना चाहते हो कि तुम्हारे घर में बड़ा प्रकाश है? यह प्रकाश किसलिए लगाना चाहते हो? क्या घर की सजाट करना चाहते हो? बेंजामेन फ्रेंकलिन ने कहा, कि नहीं, रास्ते पर ऊबड़-खाबड़ पत्थर हैं, रात में यात्री भटक जाते हैं, कोई गिर भी जाता है, रास्ता खोजना मुश्किल हो जाता है। इसलिए मैं एक प्रकाश लगता हूं कि राह चलने वाले लोगों को मेरे घर के सामने के पत्थर तो कम से कम दिखायी पड़े, कोई उनसे टकरा न जाए और न गिर जाए। उसने तो प्रकाश लगा दिया।

वह बड़े धार्मिक भाव से रोज संध्या अपना दिया जला देता घर के सामने का। लेकिन पड़ोस के लोग उसके दिए को उठाकर ले जाते। कोई उसका दिया बुझा जाता। जिनके लिए वह दिया लगाया गया था वे ही उसको बुझा देते और उठाकर ले जाते। लेकिन धीरे-धीरे वह रोज लगाता ही गया उस दिए को। न तो वह प्रकाश के संबंध में कोई घोषणा कर रहा है, न कोई प्रचार कर रहा है। लेकिन उसके ही घर के सामने लोग अंधेरे में टकरा जाएं, यह उससे नहब देखा गया इसलिए प्रकाश का एक दिया अपने घर के सामने जलाता रहा।

धीरे-धीरे लोगों को समझ में बात आनी शुरू हो गयी। राहगीरों को दूर से ही वह अंधेरे रास्ते में वह प्रकाश दिखाई पड़ने लगा और वह प्रकाश राहगीरों को कहने लगा कि आ जाओ, यह रास्ता सुगम है। यहां प्रकाश है, अंधेरा नहीं है। पत्थर दिखाई पड़ते हैं। और जब राहगीर उस प्रकाशके पास आते तो वह प्रकाश उनसे कहने लगा कि देख कर चलना, सामने पत्थर है। पीछे की गली कहीं भी नहीं जाती है, पीछे जाकर मकान में समाप्त हो जाती है, वह कोई रास्ता नहीं है। वह प्रकाश बताने लगा कि मार्ग कहां है और कहां नहीं है। धीरे-धीरे गांव उस प्रकाश के प्रति आदर से भर गया और धीरे-धीरे दूसरे लोगों ने भी अपने घरों के सामने दिए रखने शुरू कर दिए। और फिर फिल्डेफिया की नगर कमेटी ने सोचा कि क्यों न सभी रास्तों पर प्रकाश कर दिया जाए। फिर उस पूरे नगर में प्रकाश हो गया। फिर सारी दुनिया के हर गांव के रास्तों पर प्रकाश हो गया।

लेकिन एक आदमी ने, जिसने पहली दफा वह प्रकाश लगाया, लोगों ने उससे पूछज्ञ, किसलिक् लगाते हो यह प्रकाश? क्या मतलब है तुम्हारा? क्या दिखाना चाहतेहो? और जिनके लिए लगाया था वह प्रकाश, वे ही उनको बुझा-बुझा जाते थे।

मैं कोई उपदेशक नहीं हूं, लेकिन अगर मुझे दिखाता हो कि मेरी आंखों के सामने ही कोई अंधेरे में भटकता है, और मुझे दिखाता हो कि कोई पत्थर से टकराता है और मुझे दिखाता हो कि कोई दुख और पीड़ा के मार्गों को चुनता है, अंधकार के मार्गों को चुनता है, तो नहीं मैं उसे कोई उपदेश दे रहा हूं, लेकिन एक दिया अपने घर के सामने जरूर रखता हूं। हो सकता है उसे कुछ दिखाई पड़ जाए। हो सकता है जिन रास्तों पर वह भटक रहा है, उसे दिखाई पड़ जाए कि कटकाकीर्ण हैं, पत्थर से भरे हैं, अंधेरे में ले जाने वाले हैं। उसे कोई बात बोध में आ जाए। न ही कोई खुशी है इस बात की, कि कोई भीड़ सुनने आती है या नहीं आती है। कौन सुनता है, नहीं सुनता है, यह सवाल नहीं है। सवाल केवल इतना है कि मैं, मुझे दिखाई पड़ता हो कि जो रास्ता गलत है, अगर देखते हुए लोगों को उस पर चलने दूं तो मैं हिंसा का भागीदार हूं और पाप का जिम्मेवार हूं। वह मैं नहीं होना चाहता हूं इसलिए कुछ बातें मैं आप से कहता हूं। लेकिन वे उपदेश नहीं हैं। आप मानने को बाध्य नहीं, स्वीकार करने को बाध्य नहीं है, अनुयायी बनने को वाध्य नहीं हैं, कोई शिष्यत्व स्वीकार करने को बाध्य नहीं हैं। आप कोशिश भी करें मुझे गुरु बनाने की तो मैं राजी नहीं हूं। आप मेरे पीछे चलना चाहें तो मैं हाथ जोड़कर क्षमा मांग लेता हूं। कोई को मैं पीछे चलने देता हूं। अगर मेरी किताब को आप शास्त्र बनाना चाहें तो उनमें मैं आग लगवा दूंगा कि शास्त्र न बन पाएं।

ये जो मैं कह रहा हूं किन्हीं दूसरे शास्त्रों के विरोध में, वह किसी किताब के विरोध में नहीं कह रहा हूं। यह भी पूछा है, उन्होंने कि आप शास्त्र के विरोध में कहते हैं और आपकी किताबें छपती हैं और बिकती हैं। किताबों के मैं विरोध में नहीं हूं, शास्त्रों के विरोध में हूं। शास्त्र और किताब में फर्क है। किताब सिर्फ निवेदन है, शास्त्र सत्य की घोषणा है प्रामाणिक। शास्त्र कहता है कि मुझे नहीं मानोगे तो नर्क जाओगे। शास्त्र कहता है जो मुझे मानता है वही स्वर्ग जाता है, शास्त्र कहता है, मुझ पर संदेह मत करना। वह प्रामाणिक है। वह ज्ञान की अंतिम रेखा है, उसके आगे आपको संदेह करने का सवाल नहीं है। किताब ऐसा कुछ भी नहीं कहती। किताब का तो विनम्र निवेदन है कि मुझे ऐसा लगता है, वह मैं पेश कर देता हूं। गीता अगर किताब है तो बहुत सुंदर है और अगर शास्त्र है तो बहुत खतरनाक है। कुरान अगर किताब है तो बहुत स्वागत के योग्य है, लेकिन अगर शास्त्र है, तो ऐसे शास्त्रों की अब पृथ्वी पर कोई भी जरूरत नहीं है। अगर महावीर के वचन और बुद्ध के वचन किताबें हैं तो ठीक है, वे हमेशा-हमेशा पृथ्वी पर रहें, लोगों को उनसे लाभ होगा लेकिन अगर वह शास्त्र हैं तो उन्होंने काफी अहित लोगों का कर दिया है और अब उनकी कोई जरूरत नहीं है।
मेरी बात आप समझे? मैं यह कह रहा हूं कि किताबें तो ठीक हैं, शास्त्र ठीक है। अब कोई किताब पागलपन से भर जाती है और पागलपन की घोषणा करने लगती है...किताब तो क्या करेगी, जब उसके अनुयायी करने लगते हैं। जब अनुयायी किसी किताब के संबंध में विक्षिप्त घोषणाएं करने लगते हैं तो वह शास्त्र हो जाती है। जब कोई किताब अथरिटी बन जाती है तब वह शास्त्र हो जाती है। मेरी कोई किताब शास्त्र नहीं है। दुनिया ी कोई किताब शास्त्र नहीं

है। सब किताबें किताबें हैं। सब विनम्र निवेदन है उन लोगों के जिन्होंने कुछ जाना होगा, कुछ सोचा होगा, कुछ पहचाना होगा, उनके विनम्र निवेदन हैं। आप उन्हें मानने को बाध्य नहीं है, लेकिन आप उन्हें जानें, उनसे परिचित हों, यह ठीक है। लेकिन जो जान लें पढ़ कर और परिचित हो जाएं, उसको ज्ञान समझ लें तो गलती पर हैं। मैं यह नहीं कहता हूं कि कोई किताबों को नहीं जाने। मैं यह कहता हूं, किताबों से जो जाना जाएगा उसे कोई ज्ञान समझ ने की भूल न समझ ले। वह ज्ञान नहीं है। किताबों से जो जाना जाता है। वह इन्फर्मेशन है। सुचना है। नालिज नहीं है, ज्ञान नहीं है।

मेरी किताबों से भी जो जानिएगा वह भी सूचना है, वह भी ज्ञान नहीं है।अगर मैं यह कहूं कि दूसरों की किताबें तो गलत हैं और मेरी किताब ठीक हैं तो फिर मैं लंबी पागलों की कतार में एक पागल हूं। मेरा किताब और दूसरे की किताबों का सवाल नहीं है। किताब से पाया गया ज्ञान नहीं होता है। अगर आपने मेरी किताबें इसलिए खरीदी हों कि उनसे ज्ञान मिल सकता है तो कृपया उनको वापस कर दें। उनसे ज्ञान बिलकुल नहीं मिल कसता। किसी किताब से कभी नहीं मिल सकता। सूचनाएं मिल सकती हैं। सूचनाएं, अगर आप उन्हें ज्ञान समझ लें तो खतरनाक हो जाएंगी, और सुचनाएं अगर आपके भीतर प्यास को जगा दें तो बड़ी सार्थक हो जाएंगी। तीर्थंकर और पैगंबर और महापुरुष, अगर आप उन्हें गुरु बना लेते हैं तो नुकसान हो जाता है अगर वे सब आपके भीतर सोयी हुई प्यास को जगाने वाले स्रोत होजाएं तो बहुत अदभुत बात है। अगर उनको देखकर आपको आत्मग्लानि पैदा हो जाए...।

लेकिन हम बड़े होशियार लोग हैं। अगर महावीर यहां आपके बीच आ जाए या बुद्ध या जीसस क्राइस्ट, तो होना यह चाहिए कि उनको देखकर आपके भीतर आत्मग्लानि पैदा हो जाए। यह खयाल आ जाए कि मैं भी एक आदमी हूं और यह भी एक आदमी है। यह किस आनंद को, किस आलोक को उपलब्ध हो गया है मैं किस अंधेरे में भटक रहा हूं। नहीं, लेकिन आपको आत्मग्लानि बिलकुल न आएगी। आपको गुरुपूजा पैदा होगी। अदभुत अवतार आगया, चलो इसकी पूजा करें। आत्मग्लानि तो पैदा नहीं होगी, दूसरे को पूजा शुरू करेंगे। यह तो खयाल पैदा नहीं होगा कि मैं कैसा मनुष्य हूं कि मैं भटक रहा हूं अंधेरे में! एक दूसरा मनुष्य प्रकाश को उपलब्ध हो गया है। आपको यह खयाल होगा कि मैं तो मनुष्य हूं, यह आदमी मनुष्य से ऊपर है, महामानव है, सुपर मैन है, तीर्थंकर है अवतार है। यह मनुष्य नहीं है, यह दूर का है, यह भगवान का पुत्र है, यह भगवान का भेजा हुआ संदेशवाहक है, इसके पैर पड़ो, इसकी पूजा करो। आत्मग्लानि से बचने का उपाय है पूजा। जो लोग किसी की पूजा करते हैं वे बहुत बेईमान हैं, सेल्फ डिसेप्सन में पड़े हुए है। वे अपने को धोखा दे रहे हैं। वे होशियार हैं बहुत, बनिंग है, बहुत चालाक हैं। वे यह कोशिश कर रहे हैं, आत्मग्लानि से बचने की तरकीब है पूजा दूसरे की पूजा करने लगो, खुद की ग्लानि मिट जाती है। भूल ही जाती हैं कि हम भी कहीं हैं। दूसरे की महानता की चर्चा शुरू हो जाती है और खुद की क्षुद्रता भूल जाती है। होना उल्टा चाहिए था कि खुद की क्षुद्रता दिखायी पड़नी चाहिए थी। खुद की क्षुद्रता दिखायी पड़ती तो एक दूसरी दिशा में आपकी गति

होती। और दूसरे की महानता दिखायी पड़ेगी सिर्फ और पूजा होगी तो आपकी दिशा दूसरी होगी।

धर्म पूजा बन गया, साधना नहीं बन सका। इसीलिए साधना पैदा होती है--आत्मचिंतन और आत्मचि◌ार से। और तथाकथित उपासना के धर्म पैदा होते हैं पूजा और वर्शिप से। तो अब तक हमने दुनिया में जो भी ज्योतियां प्रकट हुई उन ज्योतियों के आसपास घुटने टेककर आखें बंद कर ली और जयजयकार करने लगे, बिना इस बात की फिकर किए कि ज्योति जिनमें प्रकट हुई थी, वे ठीक हमारे जैसे मनुष्य हैं। कोई ईश्वर का पुत्र नहीं है, कोई अवतार नहीं है, कोई तीर्थंकर नहीं है, सभी हमारे जैसे मनुष्य हैं। लेकिन अगर हम यह समझ लें कि वे हमारे जैसे मनुष्य हैं तो हमको बड़ी कठि◌ाई हो जाएगी, बड़ी पीड़ा हो जाएगी। फिर हमारे सवाल होगा कि हम क्यों पीछे पड़े हैं? हम क्यों अंधेरे में भटक रहे हैं? फिर हमको भी ऊपर उठना चाहिए। इससे बचनेके लिए हमने कहा कि वह मनुष्य की नहीं है। हम तो मनुष्य हैं, वे महामानव हैं। वे जो कर सकतेहैं, हम कैसे कर सकते हैं? हमारा बीज ही अलग है, उनकी बीज ही अलग है। वह अद्वितीय है, वह भिन्न ही है। तोहमने उस सबके चारों तरफ अद्वितीयता की महिमा को मंडित कर दिया। उनके शब्दों के आसपास सर्वज्ञता जोड़ दी कि वे बातें जो हैं, सर्वज्ञों की कहीं हुई हैं, कभी भूल भरी नहीं हो सकती हैं। हमने उनके आसपास प्रामाणिक जोड़ दी। आप्तता जोड़ दी। और इस आप्तता को जोड़कर हमने बचनों को शास्त्र बना दिया और जाग्रत पुरुषों को हमने अपौरुषेय बना दिया। उनको हमने महामहिमा बना दिया और परमात्मा के अवतार बना दिया। हमारे और उनके बीच हमने एक दूरी पैदा कर ली। दूरी के कारण हम निश्चित हो गए ,हमारी आत्मग्लानि समाप्त हो गयी। मनुष्य जाति इस कारण भटकी है और आज भी हमारे इरादे यही हैं कि हम इन्हीं बातों को जारी रखें और आगे भी भटकने की ही तैयारी कर रहे हैं।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि क्या सभी धर्मों को जब मैं बिमारी कहता हूं, कल ही मैंने कहा। कल ही किसी ने पूछा था कि तीन सौ धर्मों में श्रेष्ठ धर्म कौन सा है? आज फिर कोई उन्हीं के मित्र आ गए, वे शायद कल मौजूद नहीं थे। जहां तक तो...वे जरूर मौजूद रहे होंगे। वे यह पूछ रहे हैं कि और सब धर्मों के बाबात तो आपने ठभक कहा, लेकिन जैन धर्म के बाबत आपकी बात बड़ी गड़गड़ है। यह जैन धर्म उनका धर्म होगा। ये पोलैंड के निवासी फिर उपलब्ध हो गए। वह मुसलमान कहेगा कि और सबके बाबत तो आप बिलकुल ठीककह रहे हैं, दो सौ निन्यानबे धर्मों के बाबत बिलकुल सच है आपकी बात। जरा एक छोटी-सी भूल कर रहे है, इस्लाम के बाबबत आप ठीक-ठीक नहीं कह रहे हैं। वही ईसाई कहेगा, वही हिंदू कहेगा, वही सब कहेंगे। वे सब कहेंगे कि दो सौ निन्यानबे की बाबत आपकी बात तो बिलकुल ठीक है, लेकिन एक के बाबत आपकी बात गलत है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि दो सौ निन्यानबे को जाने दें भाड़ में, जिस धर्म को आप मानते हैं उसी के संबंध में मैं कह रहा हूं। दूसरे धर्मों से क्या लेना-देना है? वह एक धर्म जरूर गलत है, बाकी दो सौ निन्यानबे गलत हों या न हों, उनसे कोई मतलब नहीं है; उनसे कोई प्रयोजन

नहीं है हमारा। मैं तो आपके ही धर्म के बाबत कह रहा हूं, जो भी आपका धर्म हो, वो--चाहे जैन, चाहे हिंदू, चाहे मुसलमान। बड़ी सुविधा है इस बात में क्योंकि दूसरों के धर्म गलत हो तो बड़ी खुशी होती है मन में। पीड़ा तो वहां से शुरू होती है जहां आपको लगता है कि आपकी पकड़ भी, आपकी जकड़ भी तो कहीं गलत नहीं है?

उन्हें मित्र ने यह भी पूछज्ञ है कि--और यह भी हो सकता है कि जैन साधु आजकल जो धर्म प्रचार करते हों, वह गलत हो लेकिन महावीर का उपदेश तो गलत नहीं हो सकता।

आपको पता है कि महावीर का उपदेश क्या है? कभी महावीर यहां मौजूद हों और इतने लोग उन्हग सुनें, और आप दरवाजे के बाहर जाकर पूछें कि उन्होंने क्या कहा है, तो आप समझते हैं कि सभी लोग एकबात कहेंगे? जितने लोग होंगे, उतनी बातें होंगी।

सिंगमड फ्रायड के बीस पच्चीस मित्रों का एक समूह था। फ्रायड खुद ही एक मसीहा था। इस अर्थों में कि दुनिया में जिन लोगों ने कुछ विचारों की नयी क्रांतियां की हैं उनमें महावीर और बुद्ध के साथ फ्रायड का नाम भी खड़ा होगा। अगर हिंदुस्तान में पैदा होता है हमे उसको भगवान की हैसियत देते, लेकिन गलती की कि वहां योरोप में पैदा हुआ। वहां कोई आदमी जल्दी भगवान नहीं बनता। उसके दस मित्रों का जो पहला समूह था, एक दिन सांझ को फ्रायड ने अपने सारे शिष्यों को मित्रों को बुलाया हुआ है भोजन पर। वह सब भोजन कर रहे हैं, फ्रायड भी भोजन कर रहा है। उन सबसे विवाद शुरू हो गया किसी बात पर कि इस संबंध में फ्रायड का क्या मंतव्य है। फ्रायड मौजूद है, वह बैठा भोजन कर रहा है।

वे पच्चीसों मित्र आपस में लड़ने लगे। हरेक कहने लगा, नहीं यह मतलब नहीं है फ्रायड का। फ्रायड का मतलब और है। यह मतलब यह है। वे पच्चीसों विवाद करने लगे। घंटे भर में विवाद में इतने लीन हो गए कि वे यह भूल ही गए कि फ्रायड मौजूद है, इससे क्यों न पूछ ले कि तुम्हारा मतलब क्या है? फिर फ्रायड ने कहा, मित्रों, मेरे सोने का समय हो गया। फौरन तुमसे एक प्रार्थना करता हूं कि जो काम मेरे मरने के बाद करना था, तुम मेरी जिंदगी में मेरे सामने कर रहे हो। मैं मर जाऊं तब तुम तय करना कि फ्रायड को क्या उदपेश था! अभी तो मैं हिंदा हूं, मुझसे पूछ सकते हो। लेकिन तुम्हें मुझसे पूदने की फुर्सत नहीं। तुम आपस में तय कर रहे हो कि मेरा मतलब क्या है।

महावीर का क्या मतलब है? श्वेतांबर से पूछो, वह कहता है और मतलब है। दिगंबर से पूछो, वह कहता है और मतलब है। स्थानकवासी से पूछज्ञे, वह कहता है, और मतलब है। तेरापंथी से पूछो, वह कहता है और मतलब है। अभी यही तय न हो सका कि महावीर नगे रहते थे कि वस्त्र पहनते थे। उपदेश तो बहुत दूर की बात है। कोई कहता है वस्त्र पहनते थे, कोई कहता है नंगा रहते थे। अभी यह भी तय नहीं हो सका कि महावीर की शादी हुई थी कि नहीं हुई थी। दिगंबर कहते हैं, शादी कभी नहीं हुई। महावीर जैसा पुरुष कहीं शादी कर सकता है? श्वेतांबर कहते हैं, शादी तो हुई ही थी, लड़की भी पैदा हुई थी। लड़की का दामाद भी था। इन बातों पर ही तय नहीं हो सकता तो उपदेश पर आप क्या तय करेंगे कि महावीर ने क्या कहा है?

जैनों में एक तीर्थंकर हुए मल्लीनाथ। मल्लीनाथ के बाबत अभी तब यही तय नहीं हो पाया है कि वह स्त्री थे कि पुरुष थए। श्वेतांबर कहते थे, उनका नाम था मल्लीबाई, और दिगंबर कहते है, उनका नाम था मल्लीनाथ। हद मजा है। और आप यह तक कर रहे हैं कि उनका उपदेश क्या था, और उन्होंने क्या कहा। अभी यही तय करना मुश्किल है कि यह स्त्री थे कि पुरुष थे।

आदमी थोपता है दूसरे के ऊपर कि उसका क्या मतलब है। गीता की एक हजार टीकाएं लिखी गयी हैं। या तो कृष्ण का दिमाग खराब रहा होगा अगर उनकी एक ही बात में एक हजार मतलब हो। और या फिर टीकाकारों का दिमाग खराब रहा हो। कृष्ण ने तो वही कहा है जो कहा है, लेनिक यह कौन तय करे कि उन्होंने क्या कहा है? मैं एक तरह से तय करता हूं, आप दूसरी तरह से तय करते हैं। तीसरा आदमी तीसरी तरह से तय करता है। एक ही बात के हजार अर्थ हो सकते हैं।

लेकिन इस विवाद में क्यों पड़ना कि महावीर ने क्या कहा है? महावीर ने जिस चेतना में प्रवेश करके जामा था वह चेतना आपके पास मौजूद है। प्रवेश करिए और जानिए। महावीर को तय करने की क्या जरूरीत है, अदालत बिठलने की क्या जरूरत है कि उन्होंने क्या कहां? टीकाएं लिखने की क्ाो जरूरत है? आप भी वही हो सकते हैं जो महावीर थे। तो फिर वही होकर जान लीजिए। फिर क्या जरूरत है कि आप तय करें। ढाई हजार वर्ष पहले कोई आदमी हुआ कि नहीं हुआ, क्या कहा उसने कि नहीं कहा। इससे प्रयोजन क्या है?

मैं एक गांव में बोलने गया। बोलने के बाद एक पंडित खड़े हो गए और उन्होंने मुझे पूछा कि मैं तीन वर्षों से एक रिसर्च कर रहा हूं, एक शोध कार्य कर रहा हूं। मैं यह पता लगाना चाहता हूं कि बुद्ध और महावीर दोनों एक ही समय में हुए, उसमें उम्र किसकी ज्यादा थी--बुद्ध की उम्र ज्यादा थी कि महावीर की उम्र ज्यादा थी? मैंने कहा, उनकी उम्र तय करने में तुम अपनी उम्र क्यों खराब कर रहे हो? और तीन साल तुम्हारे खराब हो गए। उसमें से किसी की भी ज्यादा हो इससे क्या फर्क पड़ता है? यह दुनिया में कौन-सा अहम मसला है? लेकिन यह आदमी अगर तय कर लेगा तो यह पी. एच. डी. हो जाएगा। इसको एक रिसर्च की डिग्री मिल जाएगी और यह डाक्टर कहलाएगा। और लोग संभ्रम से देखेंगे कि आदमी डाक्टर है। यह आदमी पागल है। यह आदमी यह तय कर रहा है कि बुद्ध महावीर से बड़े थे कि महावीर बुव से बड़े थे। यह सब खोज-बीन करके, पच्चीस तर्क करके यह निर्णय करेगा और इस बीच यह अपनी उम्र खराब करेगा।

मेरी दृष्टि में सत्य को किसने कैसा जाना और किसने क्या कहा, यह निर्णय करने की न तो कोई जरूरत है, न कोई उपयोगिता है, न कोई अर्थ है, जब कि हम स्वयं सत्य को जानने के हकदार और मालिक हो सकते हैं। जब कि मैं सीधा ही सत्य का साक्षात्कार कर सकता हूं, जब कि मैं खुद ही वहां हो सकता हूं जहां महावीर और बुद्ध थे। तो मैं इनकी क्ाो फिकर करूं कि कौन वहां था और उससे क्या कहा! यह तो तब करने की जरूरत थी, जब

मैं यहां न पहुंच सकूं। तो यह बात निर्णय करने की जरूरत थी, कि हम यह निर्णय करें कि उन्होंने क्या कहा?

लेकिन मेरी समझ में प्रत्येक व्यक्ति अधिकारी है, जन्म से अधिकारी है उस सबको पा लेने का जो कभी भी किसी व्यक्ति ने पाया हो। इसलिए कोई आवश्यकता नहीं है कि आप पीछे लौटकर फिकर करने जाए। भीतर जाकर जानने की जरूरत है, पीछे लौटकर नहीं। पच्चीस सौ साल पीछे नहीं लौटना है, पच्चीस कदम अपने भीतर उतर लें तो सब जान लेगे जो पच्चीस सौ साल पीछे उत्तर कर आप नहीं जान सकते। अगर आप निर्णय भी कर लिया तो उसे क्या हमल होता है।

उन मित्र ने यह भी पूछा है किसी और ने कि धर्मग्रंथों में क्या सब फिजूल बातें लिखी है।

यह मैंने कब कहा? यह मैंने कब कहा कि धर्मग्रंथों में सब फिजूल बातें लिखी हैं? लेकिन धर्मग्रंथों को जो अंधे की भांति पकड़ लेता है, उसका पकड़ा हुआ तब फिजूल होता है। वह उसके अंधेपन के कारण फिजूल होता है। सवाल यह नहीं है कि धर्मग्रंथों में क्या लिखा है और क्यों नहीं लिखा है। सवाल यह है कि आप अंधे होकर पकड़ते हैं या आंख खुली होकर जीवन को खोजते हैं। अगर आप अंधे होकर पकड़ते हैं तो जो भी पकड़ लेंगे वह फिजूल होगा। वह दो कौड़ी का होगा। यह प्रश्न नहीं है कि वहां जो लिखा है वह ठीक है या नहीं? ठीक का निर्णय कौन करेगा? अंधे आदमी बैठकर निर्णय करेंगे कि प्रकाश के संबंध में जो लिखा है वह ठीक है या नहीं, तो खूब निर्णय हो जाएगा उनसे फिर! सिर फूट बोल हो जाएगी, लकड़ियां चल जाएगी, हत्याएं हो जाएंगी। अंधे क्या निर्णय करेंगे कि प्रकाश के संबंध में कही कोई कौन-सी बात सच है। कोई निर्णय उससे होने का नहीं है। कौन तय करेगा कि क्या ठीक है? आप ही तो तय होने का नहीं है। कौन तय करेगा कि क्या ठीक है? आप ही तो तय करेंगे न? अगर आप गीता पढ़कर भी निर्णय करेंगे कि यह बात ठीक है तो यह निर्णय कृष्ण का नहीं है, यह निर्णय आपका निर्णय है। और आपकी स्थिति क्या है? अगर आप जानते हो तो गीता से पूछने नहीं जाते। आप नहीं जानते हैं सो गीता से पूछने गए। और मैं पढ़कर आप जो निर्णय करेंगे वह निर्णय आपका ही है कि गीता का क्या अर्थ है!

बुद्ध एक रात भिक्षुओं की एक सभा में बोलते थे। कोई दस हजार भिक्षु थे। वे बुद्ध की बातें सुने। एक चोर भी उस रात सभा में सुनने आ गया था। चोर भी धर्म सभाओं में बहुत जाते हैं क्योंकि उनको बड़ा भय लगा रहता है कि कहीं कोई गड़बड़ चल रही है, कुछ गड़बड़ न हो जाए। तो वह काफी धर्म सभाओं में जाते हैं, धर्मग्रंथ भी खरीदते हैं और रखते हैं पास में। क्योंकि पीछे कभी उनसे भी रास्ता मिल सकता है। एक चोर भी पहुंच गया था। एक वेश्या भी पहुंच गयी थी उस सभा में। बुद्ध तो रोज बोलते थे, रोज उनका नियम था। बोलने के बाद वे भिक्षुओं को कहते थे अब जाओ, रात्रि का अंतिम कार्य करो। यह मतलब यह था कि भिक्षु रोज रात्रि को अंतिम ध्यान के लिए जाते थे, फिर ध्यान करके सो जाते थे। रोज-रोज

कहने को कोई जरूरत न थी। बुद्ध इतना कह देते थे कि अब आज की बात पूरी हुई। अब आज रात्रि के अंतिम कार्य में लगें।

बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को कहा, भिक्षुओं! जाओ रात्रि का अंतिम कार्य करो। चोर को खयाल आया कि अरे कि मैं कहा बैठा, कब से बातचीत सुन रहा हूं! जाऊं, अपना काम करूं रात्रि का। व्यवसाय का समय हो गया, मेरी दुकान खुलने का वक्त हो गया। वेश्या को ध्यान आया कि बड़ी रात बीत गयी, उसे ग्राहक आने शुरू हो गए होंगू। वह जाए, रात का अपना काम करे। बुद्ध ने कहा, कि रात का कार्य करो। भिक्षु ध्यान करने चले गए, वेश्या वेश्यालय में चली गयी, चोर चारेी करने चला गया। कहने वाला एक ही थभ, कही गयी बात एक ही थी। तीन ने सुनी, तीन अर्थ हो गए, तीन अलग अर्थ हो गए।

इस भूल में मत रहना कि जब आप कृष्ण के वचनों को पढ़ते हो तो आप कृष्ण के वचन पढ रहे हैं? आप खुद को ही कृष्ण के वचनों में पढ़ लेते हों। हर आदमी अपने को ही पढ़ता है, किसी दूसरे को कोई नहीं पढ़ता है। हम अपने को ही पढ़ लेते हैं। किताबें आईने बन जाती हैं। हमारी ही तस्वीर और हमारी हो शक्ल उनमें दिखायी पड़ती है। इसीलिए तो एक-एक किताब की हजारों टीकाएं हो जाती है। गीता को टीका तिलक ने लिखी, उसको पढ़े। गीता की टीका गांधी ने लिखी, उसको पढ़े! गीता की टीका अरविंद ने लिखी, उसको पढ़े। बिनोबा ने लिखी, उसको पढ़े। आप पाएंगे, ये एक ही किताब के बाबत लिख रहे हैं ये लोग कि अलग-अलग किताबों के बाबत? ये चारों आदमी अपनी-अपनी तस्वीर देख रहे हैं। गीता से किसी का कोई मतलब नहीं है, कोई प्रयोजन नहीं है। गीता बहाना है, अपनी तस्वीर फिर से देख लेने का। कोई भी जब पढ़ता है और समझता है तो अपने को ही पढ़ता और समझता है।

इसलिए जितनी महत्वपूर्ण चेतना आपकी होगी जीवन में आपको उतनी ही बातें दिखायी पड़ना शुरू हो जाएगी। जितनी गहरी आपकी अंतर्दृष्टि होगी, जीवन उतना ही आपको दिखायी पड़ना शुरू हो जाएगा। अगर आंखें अंधी हैं तो गीता में भी धर्म नहीं लिम सकता और अगर आंखें खुली हैं तो रास्ते के किनारे पड़े पत्थर में भी आपको धर्म का पूरा संदेश दिखायी पड़ जाएगा। अगर चेतना सोयी हुई है तो कोई धर्मग्रंथ उसे नहीं जगा सकता। और चेतना अगर जागी हुई है तो सारी पृथ्वी धर्मग्रंथ हो जाती है। सब संदेश परमात्मा के संदेश हो जाते हैं। सब इशारे होजाते है। सब लहरें उसकी लहरें हो जाती हैं। सब ध्वनियां उसकी ध्वनियां हो जाती हैं।

नाचो जीवन है नाच

मेरे प्रिय आत्मन,

एक छोटी सी घटा से मैं अपनी आज की बात शुरू करना चाहता हूं,

एक महानगरी में, सौ मंजिल एक मकान के ऊपर, सौवीं मंजिल से एक युवक कूद पड़ने की धमकी दे रहा था। उसने अपने द्वार, अपने कमरे के सब द्वार बंद कर रखे थे। बालकनी में खड़ा था। सौवीं मंजिल से कूदने के लिए तैयार, आत्महत्या करने को। उसने नीचे की मंजिल पर खड़े होकर लोग उससे प्रार्थना कर रहे थे कि आत्महत्या मत करो, रुक जाओ, यह क्या पागलपन कर रहे हो? लेकिन वह किसी की सुनने को राजी नहीं। तब एक बूढ़े आदमी ने उससे कहा, हमारी बात मत सुनो, लेकिन अपने मां बाप का खयाल करो कि उन पर क्या गुजरेगी! उस युवक ने कहा, न मेरा पिता है, न मेरी मां है। वे दोनों मुझसे पहले ही चल बसे। बूढ़े ने देखा कि बात तो व्यर्थ हो गयी। तो उसने कहा, कम से कम अपनी पत्नी का स्मरण करो, उस पर क्या बीतेगी! उस युवक ने कहा, मेरी कोई पत्नी नहीं, मैं अविवाहित हूं। उस बूढ़े ने कहा, कम से कम अपनी प्रेयसी का खयाल करो। किसी को प्रेम करते होगे, उस पर क्या गुजरेगी? उस युवक ने कहा, प्रेयसी! मुझे प्रेम से घृणा है। स्त्री को मैं नर्क का द्वार समझता हूं। मैं कोई स्त्री को प्रेम करता नहीं। मुझे कूद जाने दें।
अंतिम बात रह गयी थी कहने को। उस बूढ़े ने कहा, कूदने के पहले एक बात यह सोच लो, किसी की फिकर मत करो, लेकिन, अपनी तो फिकर करो! अपना जीवन नष्ट कर रहे हो? उस युवक ने कहा, काश! मुझे पता होता कि मैं कौन हूं तो शायद नष्ट करने की बात ही न आती। लेकिन मुझे यह भी पता नहीं कि मैं कौन हूं।
पता नहीं वह युवक कूद गया नहीं कुछ गया लेकिन उस युवक ने यह कहा कि मुझे यह भी पता नहीं कि मैं कौन हूं। बचकर क्या करूंगा, जीवित रहकर भी क्या करूंगा? जिस जीवन में यह भी पता न हो कि हम कौन है, उस जीवन का मूल्य और अर्थ क्या रह जाता है।
इस घटना से इसलिए अपनी बात शुरू करना चाहता हूं कि हम सब जीवन में करीब-करीब ऐसी ही हालत में खड़े हैं जहां हमें कोई भी पता हनीं कि हम कौन हैं। अपने होने का ही कोई बोध नहीं है। जीते हैं, लेकिन जीवन से कोई साक्षात्कार नहीं हुआ। श्वास लेते हैं, चलते हैं, उठते हैं, बैठते हैं, फिर एक दिन समाप्त हो जाते हैं। लेकिन ज्ञान नहीं हो पाता कि कौन था जो जन्म, कौन था जो जीया, कौन था जो समाप्त हो गया।
इतने अज्ञान से भरे हुए जीवन में कोई आनंद हो सकता है? इतने अज्ञान से भरे हुए जीवन में कोई प्रेम हो सकता है? इतना अज्ञान से भरे जीवन में कोई उपलब्धि हो सकती है? इतने अज्ञान से भरे जीवन में कोई अर्थ, कोई प्रयोजन, कोई सार्थकता हो सकती है? नहीं

हो सकती है, नहीं है। इसीलिए मनुष्य जाति इतनी उदास, इतनी चिंतित, इतनी भयभीत, इतनी दुखी, इतनी विपन्न मालूम पड़ता है। जैसे कोई वृक्ष की जड़ें हिला दी गयी हों, जैसे किसी वृक्ष को जड़ों से उखाड़ दिया गया हो, ऐसी मनुष्य जाति अपरूटेड, जैसे सारी जड़ें हिल गयी हों, ऐसी मालूम पड़ती है।

ये जड़े किस चीज से हिल गयी हैं? मनुष्य का यह भी पता न रह जाए कि मैं कौन हूं तो उसकी जड़ें जीवन से हिल जाती हैं। जीवन का--शुभ जीवन का, सुंदर जीवन का, आनंदपूर्ण जीवन का अगर कोई आधार हो सकता है तो एक ही हो सकता है कि व्यक्ति कम से कम इतना तो जान ले कि वह कौन है, और क्या है और इसलिए है?

मनुष्य के सामने हमेशा से खड़ा हुआ प्रश्न एक ही है, और हम अपने को कितना ही भुलाने की कोशिश करें, कितना ही उलझाने की कोशिश करें, वह प्रश्न हमारे सामने से हटता नहीं, जब तक कि हल न हो जाए। हम कितना ही धन इकट्ठा कर लें और कितने ही महल इकट्ठे कर लें और कितना ही यश अर्जित कर लें, लेकिन एक प्रश्न बीच-बीच में बार-बार खड़ा हो जाता है--मैं कौन? मैं किसलिए हूं? इस जीवन का अर्थ है? फिर हम काम में लग जाते हैं कि भूल रहें, भूले रहें। लेकिन यह प्रश्न पीछा नहीं दौड़ेगा। यह जीवन का पहला प्रश्न है, और पहले प्रश्न को जो हल नहीं कर पाता वह भी हल नहीं कर पाएगा। जीवन भर यह प्रश्न उसका पीछा करेगा, और जिस आदमी का यह प्रश्न पीछा करता है कि मैं कौन हूं, वह आदमी कभी भी निश्चित नहीं हो सकता। उसके जीवन में चिंता बनी ही रहेगी।

हमारी स्थिति वैसी ही है जैसी कोई आदमी यात्रा पर निकला हो, और उसे यह भी पता न हो कि मैं कहा जा रहा हूं। वह ट्रेन में बैठ गया हो और उसे यह भी पता न हो कि मुझे किस स्टेशन पर पहुंच जाना है। वह पच्चीस तरह से अपने को भुलाने की कोशिश करता हो, अखबार पढ़ता हो, रेडियो खोलता हो, पड़ोस में बात करता हो, लेकिन थोड़ी बहुत देर से फिर उसे यह खयाल आ जाता है कि मैं जा कहा रहा हूं! यह ट्रेन मुझे कहा ले जाएगी? मुझे किस स्टेशन पर उत्तर जाना है? वह प्रश्न उसका पीछा करेगा, करेगा। स्वाभाविक है कि पीछा करे। जिस यात्री को यात्रा के लक्ष्य का ही कोई पता न हो--और हम तो ऐसे यात्री हैं जिन्हें यात्रा के लक्ष्य का कुछ पता नहीं, जिन्हें यह भी पता नहीं कि यात्री कौन है? मैं कौन हूं? हम न केवल यह नहीं जानते हैं कि हमें कहां पहुंचना है, न केवल हम यह नहीं जानते हैं, हम कहां उतरना है। न हम यह जानते हैं, हम किस दिशा में यात्रा करनी है। हमें यह भी पता नहीं है कि मैं कौन हूं जो यात्रा करने वाला हूं।

तो यदि मनुष्य मालूम पड़ता हो, भयातुर, घबड़ाया हुआ तो आश्चर्य है? स्वाभाविक है। जब तक मनुष्य जीवन के इस प्राथमिक प्रश्न का उत्तर न खोज ले तब तक उसके जीवन में आनंद की कोई वर्षा नहीं हो सकती है। न वह आत्मविश्वस्त हो सकता है न वह निश्चित हो सकता, न उसके तनाव समाप्त हो सकते, न उसकी अशांति समाप्त हो सकती, न उसकी पीड़ा बंद हो सकती, न उसे दुख से छुटकारा हो सकता। फिर वह कितने उपाय करता रहे, वे सब उपाय अपने वास्तविक प्रश्न और जीवन की वास्तविक समस्या को भुलाने के उपाय

हैं। भुलाने से कोई बात भूलती नहीं। जितना हम भुलाने की कोशिश करते हैं वह उतनी ही प्रबल होकर सामने खड़ी हो जाती है। आदमी के जन्म से लेकर मृत्यु तक यह प्रश्न पीछा करता है, मैं कौन हूं और किसलिए हूं।

और अगर इसका कोई पता नहीं चलेगा तो फिर शास्त्र ने जैसा कहा है, मैंने इज ए यूज़लेस पैशन। शास्त्र कहता है, आदमी एक व्यर्थ वासना है जिसमें कोई अर्थ नहीं। तो फिर अंत में यही दिखायी पड़ेगा कि आदमी एक व्यर्थ की दौड़-धूप है, एक अर्थहीन कथा जिसका न कोई प्रारंभ, न कोई अंत, न जिसका कोई उद्देश्य। तो ऐसे व्यर्थ जीवन में शांति हो सकती है? ऐसे मीनिंगलेस एक्जिस्टेंस में, ऐसे अर्थहीन अस्तित्व में प्राण निश्चित हो सकते हैं? इतनी व्यर्थता के बीच प्रेम का जन्म हो सकता है? इतनी व्यर्थता के बीच, कोई सत्य, कोई शिव, किसी सुंदर का अवतरण हो सकता है? इसलिए इसी संबंध में थोड़ी बात मुझे आपसे कहनी है।

मैं कहना चाहता हूं, मनुष्य एक व्यर्थ वासना नहीं है, यूजलेस पैशन नहीं है। मैं कहना चाहता हूं, जीवन एक अर्थहीन कथा नहीं है। मैं कहना चाहता हूं, जीवन एक सार्थक आनंद है, लेकिन केवल उन्हीं के लिए जो जीवन की पहली को सुलझाने की हिम्मत दिखाते हैं। हम सब तो एस्केपिस्ट हैं। इस सब तो जीवन की तरफ पीठ करने भागने वाले लोग है। जो जीवन में भागते हैं, अगर जीवन उन्हें आनंद न हो सके, तो इसमें दोष किसका, कसूर किसका? जीवन को आमने-सामने लेना है, जीवन का एक एनकाउंटर करना है। जीवन से मुठभेड़ लेनी है, जीवन का सामना करना है तो जीवन का अर्थ खुलना शुरू हो जाता है। जो जीवन को आमने-सामने खड़े होकर देखने की हिम्मत जुटाता है वही व्यक्ति इस समस्या को सुलझाने में समर्थ हो पाता है कि मैं कौन हूं।

लेकिन आदमी ने इस समस्या से बचने के बहुत उपाय खोज लिए हैं--हल हरने के नहीं, बचने के लिए। इस समस्या को सुलझा लेने के नहीं। समस्या से भागने के। हमारी शायद आदत यह हो गई है कि हम हर प्रश्न समस्या से भागने के लिए कोई रास्ता खोज लेते हैं। अगर घर में कोई बीमार पड़ा है, अगर दिवाला निकल गया है, अगर धन की तंगी आ गयी है, अगर चिंतित हो उठा है तो कोई आदमी संगीत सुनकर अपने को भुला लेता है। कोई सिनेमा में बैठकर अपने को भुला लेता है। कोई शराब पीकर अपने को भुला लेता है। लेकिन भुलाने से कोई समस्या हल होती है? भुलाने से सिर्फ समस्या को हल करने की हमारी क्षमता और शक्ति क्षीण होती है। समस्या तो वही की वही खड़ी रहती है। हम और कमजोर वापस लौटते हैं। जितनी देर हम किसी समस्या को भुलाने की कोशिश करते हैं उतनी देर में हम और कमजोर हो जाते हैं। समस्या का सामना करने का हमारी सार्मथ्य शक्ति कम हो जाती है। जीवन की पूरी समस्या के साथ हम यही व्यवहार कर रहे हैं जो हम छोटी समस्याओं के साथ करते हैं। आदमी ने स्वयं को भूल जाने के लिए सब तरह के विकास कर लिए हैं। सारी शराबें, सारे सादक द्रव्य, सारी वे खोजें, जिन्हें आदमी मनोरंजन

कहता है, वे सारी खोजें जीवन की वास्तविक समस्या को भुलाने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं करती।

किस बात को आप मनोरंजन कहते हैं? जहां आप घड़ी दो घड़ी अपने को भूल जाते हैं। संगीत में, सिनेमा में, शराब में, मित्रों में मंडल में, भजन कीर्तन में, मंदिर में, प्रार्थना में, जहां भी आप थोड़ी देर के लिए भूल जाते हैं आप कहते हैं, बड़ा अच्छा लगा। लेकिन अपने को भूलना आत्मघाती है, स्वासाइडल है। अपने को जानना है, भूलना नहीं है। भूलकर क्या हल होगा? कौन-सी समस्या सुलझ जाएगी? नींद में पड़ जाने से कौन-सी समस्या का अंत आ जाएगा? लेकिन आदमी ने आज तक अपने को भुलाने की कोशिश की है, उन लोगों ने दो कोशिश ही की है जिन्हें हम सांसारिक कहते हैं, जिन्हें हम धार्मिक कहते हैं। तथाकथित धार्मिक लोगों ने भी स्वयं को भुलाने की कोशिश की है।

प्रश्न है कि मैं हूं। और इसके हमने कुछ रेडिमेड उत्तर तैयार कर रखे हैं जो कि भुलाने के लिए तरकीब का काम करते हैं। जब प्रश्न उठता है कि कौन हूं? हम में खोजते हैं, वहां उत्तर मिल जाते है कि तुम तो परमात्मा हो, तुम ब्रह्मा हो, तुम तो आत्मा हो। फिर उन उत्तरों को हम पकड़ लेते हैं और दोहराने लगते हैं मैं आत्मा हूं, मैं ब्रह्म हूं, मैं परमात्मा हूं। रोज सुबह शाम हम इसे दोहराने मग लग जाते हैं। शायद हम सोचते होंगे कि दोहराने से समस्या हल हो जाएगी? शायद हम सोचते होंगे इस भांति किसी विचार को, शब्द को पकड़कर बार-बार स्मरण करने से जीवन का प्रश्न समाप्त हो जाएगा। शब्द असत्य और कुछ भी नहीं है। शब्द बिलकुल ताश के पत्तों जैसा है। ताश के पत्ते दे दिए जाएं तो हम तरकीब के घर बना सकते हैं ताश के पत्तों से, लेकिन ताश के पत्तों का घर हवा का जरा सा झोंका, और गिर जाते हैं शब्दों से जो हम घर बनाते हैं, शब्दों से भी जो हम अपने भीतर समस्याओं को हल करने की कोशिश करते हैं वह ताश के पत्तों से भी कमजोर चीज शब्द का कोई प्राण ही नहीं शब्द का कोई अस्तित्व ही नहीं। शब्द में कोई ठोसपन नहीं शब्द तो बिलकुल हवा में खींची गयी लकीर की तरह है। और हमने सारी समस्याओं को शब्दों से हल करने की कोशिश की है। इसलिए समस्याएं तो वहीं की वहीं है, आदमी शब्दों में उलझकर नष्ट हुआ जा रहा है आदमी के ऊपर जो सबसे बड़ा दुर्भाग्य है वह शब्दों के ऊपर विश्वास सबसे बड़ा दुर्भाग्य है जिसके कारण जीवन की कोई समस्या हल नहीं हो पाती।

हमारे पास क्या है? ज्ञान के नाम पर हमारे पास शब्दों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। किन्हीं के पास हिंदुओं के शब्द हैं, किन्हीं के पास मुसलमानों के शब्द हैं, किन्हीं के पास जैनों के शब्द हैं, किन्हीं के पास ईसाइयों के शब्द हैं। के अतिरिक्त हमारे पास संपत्ति क्या है? अगर हम भीतर खोजने जाए तो शब्दों के अतिरिक्त हमारे पास क्या है? और शब्द का क्या मूल्य हो सकता है?

एक सम्राट के द्वार पर एक कवि ने एक दिन सुबह आकर सम्राट की प्रशंसा में कुछ गीत कहे, कुछ कविताएं कहीं। फिर कवि तो रुकते नहीं शब्दों का महल बनाने में। वे तो कुशल होते हैं। उन्होंने, उस कवि ने सम्राट को सूरज बना दिया, सारे जगत का प्रकाश बना दिया।

उस कवि ने सम्राट को जमीन से उठाकर आसमान पर बिठा दिया उसने अपनी कविता में जितनी प्रशंसा कर सकता था, की। सम्राट ने उससे कहा, धन्य हुआ तुम्हारे गीत सुनकर। बहुत प्रभावित हुआ। एक लाख स्वर्ण मुद्राएं कल तुम्हें भेंट कर दी जाएंगी। कवि तो दीवाना हो गया। सोचा भी न था कि एक लाख स्वर्ण मुद्राएं मिल जाएगी। आनंद विभोर घर लौटा, रात भर सो नहीं सका। बार-बार खयाल आने लगा, एक लाख स्वर्ण मुद्राएं। क्या करूंगा। न मालूम कितनी योजनाएं बना लीं। कवि था, शब्दों का मालिक था। बहुत शब्द जोड़ लिए। सारी भविष्य स्वर्णमय हो गया सारा भविष्य एक सपना हो गया। जीवन एक धन्यता मालूम होने लगी। सुबह जल्दी ही, सूरज अभी निकल ही नहीं पाया कि द्वार पर पहुंच गया राजा ने सम्राट ने बिठाया और थोड़ी देर बाद पूछा, कैसे आए हैं? उस कवि ने पूछा, कहीं भूल तो नहीं गया सम्राट! पूछता है कैसे आए हैं उसने कहा कि पूछते हैं कैसे आया हूं? रात भर नहीं सो सका, क्या पूछते हैं आप? कल कहा था आपने की एक लाख स्वर्ण मुद्राएं भेंट करेंगे सम्राट हंसने लगा, कहा, बड़े नासमझ हैं आप। आपने शब्दों से मुझे प्रसन्न किया था, मैंने भी शब्दों से आपको प्रसन्न किया था इसमें लेने-देने का कहां सवाल आता है? कैसी एक लाख स्वर्ण मुद्राएं? आपने कुछ शब्द कहे थे, कुछ शब्द मैंने कहे थे। शब्द के उत्तर में शब्द ही मिल सकते हैं। स्वर्ण मुद्राएं? कैसे? तब कवि को पता चला कि अपने शब्द में थोथे हैं। उनके भीतर कोई कंटेंट नहीं हैं। शब्द अपने आपमें पानी पर खींची गयी लकीरों से ज्यादा नहीं हैं। लेकिन हमारे पास क्या है? शब्दों के अतिरिक्त कुछ और है।

शब्दों पर हम जीते और लड़ते भी हैं। मैं कहता हूं, मैं हिंदू हूं। मैं कहता हूं, मैं मुसलमान हूं। कोई कैसे मुसलमान हो गया, कोई कैसे हिंदू हो गया? कुछ शब्द हैं जो कुरान से लिए गए हैं, कुछ शब्द हैं जो गीता से लिए गए हैं। कुछ शब्द हैं जो इस मुल्क में पैदा हुए है, कुछ शब्द है जो उस मुल्क में पैदा हुए हैं। और शब्दों को हमने इकट्ठा कर लिया तो एक तरफ के शब्द मुसलमान बना लेते हैं, दूसरे तरह के शब्द हिंदू बना लेते हैं, तीसरे तरह के शब्द जैन बना देते हैं। क्योंकि किसी के भीतर कुरान है, किसी के भीतर बाइबिल है, किसी के भीतर गीता है। शब्दों के अतिरिक्त हमारी संपदा क्या है? और इन कोरे शब्द पर हम लड़ते भी है और जीवित आदमी की छाती में तलवार भी भौंक सकते है। मंदिर भी जला सकते हैं, मस्जिद में आग भी लगा सकते हैं। क्योंकि मेरे शब्द अलग है आपके शब्द अलग है।

आदमी शब्दों पर जी रहा है हजार वर्षों से और सोच रहा है कि शब्दों में कोई बल है, कोई संपदा है, कोई संपत्ति है। शब्द एकदम बोझ हैं, लेकिन शब्दों से भ्रम जरूर पैदा होता है। जैसे उस कवि को भ्रम पैदा हुआ एक लाख स्वर्ण मुद्राओं का। रात भर उसे उसने गिनती की। हाथ में स्वर्ण मुद्राएं पड़ी। रात भर उसने सपने बनाए कि अब क्या करूं और क्या न करूं? कितना बड़ा भवन बनाऊं, कितना बड़ा रथ खरीदूं, कितना बड़ा बगीचा लगाऊं, क्या करूं, क्या न करूं? लेकिन हाथ में कुछ भी न था। एक लाख स्वर्ण मुद्रा का शब्द था। शब्द से उसने फैलाव कर लिया।

हमारे हाथ में क्या है? आत्मा, परमात्मा, मोक्ष, जन्म, जीवन, प्रेम, आनंद हमारे पास शब्दों के अतिरिक्त और क्या है? लेकिन शब्द से जरूर भ्रम पैदा होता है। छोटा-सा बच्चा स्कूल में पढ़ता है, सी ए टी कैट, कैट यानि बिल्ली। बार-बार पढ़ता है, सी ए टी कैट, कैट यानि बिल्ली। सी ए टी कैट, कैट यानी बिल्ली। सीख जाता है, फिर वह कहता है कि मैं जान गया। कैट यानि बिल्ली। लेकिन उसने जाना क्या है? उसने दो शब्द जाने कैट भी एक शब्द है, बिल्ली भी एक शब्द है। बिल्ली को जाना उसने? लेकिन वह कहता है कि मैंने जान लिया। कैट यानि बिल्ली। उसने दो शब्द जान लिए, दोनों का अर्थ जान लिया। शब्द भी शब्द हैं, अर्थ भी शब्द। और बिल्ली पीछे छूट गयी, वह जो जीवित प्राण है बिल्ली का। उसे उसने बिलकुल नहीं जाना, लेकिन वह कहेगा कि मैं जानता हूं कैट यानि बिल्ली। लेकिन बिल्ली को पता भी नहीं होगा कि मैं कैट हूं या बिल्ली हूं। बिल्ली के पता भी नहीं होगा कि आदमी ने मुझे क्या शब्द दे रखे हैं।

और आदमी जमीन पर न हो, तो बिल्ली का क्या नाम होगा? कोई भी नाम होगा। लेकिन बिल्ली फिर भी होगी। शब्द कोई भी न होगा, बिल्ली फिर भी होगी। आकाश में तारे होंगे, शब्द कोई न होगा। आदमी नहीं होगा तो। सूरज उगेगा लेकिन शब्द को नहीं होगा। वृक्षों में फूल खिलेंगे लेकिन कोई फूल गुलाब का नहीं होगा। कोई चमेली का नहीं होगा।

शब्द आदमी का इनवेंशन है, आदमी की ईजाद है। लेकिन शब्द से एक भ्रम पैदा होता है। मैंने सीख लिया कि इस फूल का नाम गुलाब है तो मैं समझता हूं, मैं गुलाब को समझ गया? मैंने शब्द सीख लिया कि इस फूल का नाम गुलाब है तो मैं समझता हूं, मैं गुलाब को समझ गया? शब्द सीख लेने से गुलाब को समझने का क्या संबंध है? लेकिन जो आदमी गुलाबों की जितनी जातियों का नाम जानता है, समझता हूं मैं गुलाबों का उतरा ही बड़ा जानकार हूं। जितने प्रकार के गुलाबों का नाम बता सकता है, कहेगा कि मैं उतना जानकार हूं। जानकार वह किस चीज का है--गुलाब का या शब्दों का, नामों का? हो सकता है, गुलाब से उसकी कोई पहचान ही नहीं हुई हो। गुलाब को उसने जाना ही न हो कभी? गुलाब से सौंदर्य ने उसे कभी पकड़ा ही न हो, गुलाब कभी उसकी आत्मा पर चित्र न बना हो, गुलाब कभी उसके भीतर प्रविष्ट न हुआ हो। कभी वह गुलाब के भीतर प्रविष्ट न हुआ हो। उसे गुलाब का कोई पता ही न हो, लेकिन वह कहता है, मैं जानता हूं क्योंकि इस फूल का नाम गुलाब है।

हमने शब्द सीख रहे हैं, और शब्दों को ज्ञान समझ रखा है। आदमी को अज्ञान में बनाए रखने का सबसे बड़ा कारण है कि आदमी ने शब्दों को ज्ञान मान लिया है। जब तक शब्दों को ज्ञान समझा जाएगा तब तक मनुष्य जाति के जीवन में ज्ञान का कोई जन्म नहीं हो सकता है। शब्द ज्ञान नहीं है। सत्य शब्द के पीछे है, सत्य शब्द के पहले है। सत्य शब्द मिट जाते हैं तब भी शेष रह जाता है। सत्य को हम शब्द देते हैं लेकिन सत्य शब्द नहीं है। लेकिन यह भूल पैदा हो जाती है।

कोई मुझे मिलता है, मैं पूछता हूं, आपका परिचय? वह बता देता, मेरा नाम राम है। फिर मैं दूसरे लोगों को कहता हूं, मैं राम को जानता हूं, मैं जानता क्या हूं? मैं एक शब्द जानता हूं राम, और इस आदमी का नाम राम है, इतना जानने को मैं कहता हूं, मैं जानता हूं, मैं परिचित हूं, मैं भली-भांति जानता हूं। लेकिन उस राम के पीछे क्या छिपा है उस व्यक्ति में क्या छिपा है? उस शब्द में क्या छिपा है? उस शब्द के पार वह जो असली आदमी है वह क्या है? शब्द तो हैं कि सिंबल है, प्रतीक है। वह असली आदमी, सब्स्टेंस क्या है? उसका मुझे कोई पता नहीं है, लेकिन हम नाम जानकर कहने लगते कि मैं परिचित हूं। हमने सब नाम सीख रखे हैं। हमने अपने बाबत भी नाम सीख रखे हैं--शरीर आत्मा, परमात्मा, सब हमने सीख रखे हैं। कोई पूछे कौन हैं आप? तो सीखा हुआ आदमी कहेगा मैं आत्मा हूं। आत्मा अमर है। लेकिन सब शब्द हैं, कोरे शब्द हैं क्योंकि किताब में पढ़ लिए गए हैं। जाना कुछ भी नहीं गया है।

हम सब शब्दों की मालकियत कर बैठे हैं। शब्दों को पकड़कर बैठ गए हैं। और जो आदमी शब्दों का जितना कुशल कारीगर होता है वह उतना ज्ञानी मालूम पड?ता है। शब्दों से ज्ञान को कोई संबंध ह्नीं है। इसलिए हम पंडितों को ज्ञानी समझ लेते हैं। पंडित भूलकर भी ज्ञानी नहीं होता। होना भी चाहे तो नहीं हो सकता है जब तक कि पंडित होना मिट न जाए। दुनिया में अज्ञानियों को ज्ञान मिल सकता है लेकिन पंडितों को कभी नहीं मिलता है। क्योंकि शब्द पर उनकी इतनी पकड़ है गीता उन्हें कंठस्थ है बाइबिल उन्हें पूरी याद है, उपनिषद उन्हें पूरे रटे हैं। वे कहीं बच्चों वाला काम कर रहे हैं सी ए टी कैट यानि बिल्ली। वह उपनिषद कंठस्थ कर लिए हैं, गीता कंठस्थ कर ली है। जब भी पूछिए तो गीता बोलना शुरू हो जाती है, उपनिषद निकलनी शुरू हो जाती है। हमें लगता है, आदमी बहुत ज्ञानी है। लेकिन क्या निकल रहा है बाहर? सिवाय शब्दों के और कुछ भी नहीं। शब्द के कारण मनुष्य अपने को जानने से वंचित है।

फिर क्या रास्ता हो सकता है? शब्दों से कोई ऊपर उठे तो स्वयं को जान कसता है? सत्य के पार उठे, शब्द को छोड़े, शब्द के पीछे जाए, फूल को छोड़ दे, शब्द को और जो फूल है उस तक पहुंच। गुलाब को छोड़ दे शब्द को, और जो गुलाब का फूल है वस्तुतः उस तक जाए, तो शायद जान भी सकता है।

चीन में एक सम्राट था। उसने सारे राज्य में खबर की कि मैं एक राज महल बनाना चाहता हूं। एक मुर्गे का चित्र बनाना चाहता हूं। सारे राज्य के बड़े-बड़े कुशल कलाकार, चित्रकार, पेंटर मुर्गे का चित्र बनाकर राजदरबार में उपस्थित हुए। बड़ी पुरस्कार के मिलने की संभावना थी। फिर जो आदमी जीत जाएगा उस प्रतियोगिता में वह राज्य का कला गुरु भी नियुक्त हो जाएगा। वह शाही चित्रकार हो जाएगा। हजारों चित्र आए, एक से एक सुंदर चित्र था। राजा दंग रह गया। चित्र ऐसे मालूम पड़ते थे जैसे जिंदा मुर्गे हों, इतने जीवंत थे। बड़ी मुश्किल हो गई। कैसे तय करें कि कौन चित्र सुंदर है? भिन्न भिन्न चित्र थे, सुंदर सुंदर चित्र थे। एक बूढा चित्रकार था राजधानी में। राजा ने उसे स्मरण किया और उसे बुलाया और कहा कि

कोई चित्र चुनो। कौन सा चित्र सत्य है? कौन सा चित्र सुर्वाग सुंदर है, उसी को हम राज्य की मुहर बना देंगे।

उसे बूढ़े चित्रकार ने द्वार बंद कर लिया। सुबह से सांझ तक वह कमरे के भीतर था। शाम को बाहर आया, उदास। राजा को उसने कहा, कोई भी चित्र ठीक नहीं, कोई भी चित्र मुर्गे नहीं है। राजा तो दंग रह गया सब चित्र मुर्गों के थे। उसकी तो कठिनाई यह हो रही थी कि कौन चित्र सबसे सुंदर है? और उस चित्रकार ने आकर कहा कि चित्र मुर्गे के नहीं हैं। राजा ने कहा, क्या कहते हैं आप? क्या कसौटी है आपके जांच ने की? क्या क्राइटेरियन है, कैसे आपने पहचाना? उसने कहा, मेरा एक ही क्राइटेरियन हो सकता था, एक ही मापदंड हो सकता था। मैं एक जानदार, जवान मुर्गे को लेकर कमरे के भीतर गया और मैंने देखा मुर्गा पहचानता है किसी मुर्गे को कि नहीं! लेकिन मुर्गे ने ध्यान ही नहीं दिया इन चित्रों पर। हजार चित्र रखे थे वहां, वहां हजार मुर्गे थे। अगर मुर्गा एक भी मुर्गे को पहचानता तो बांग देता, चिल्लाकर खड़ा हो जाता, लड़ने की स्थिति में आ जाता या पास चला जाता, दोस्ती के लिए हाथ बढ़ाता, कुछ करना। लेकिन मुर्गा दिन भर रहा। सोया रहा, बैठा रहा, लेकिन एक चित्र को उसने नहीं देखा। राजा ने कहा, यह तो बड़ी मुश्किल हो गयी। मैंने तो सोचा भी नहीं था कि मुर्गों से पहचान करवायी जाएगी। अब क्या होगा?

उस बूढ़े ने कहा, मेरी उम्र ज्यादा हुई अन्यथा मैं कोशिश करता। लेकिन कौन जाने, बच जाऊं। कम से कम तीन साल लग जाएंगे। तो मैं कोशिश करूं, राजा ने कहा, तीन साल! सत्तर साल का बूढ़ा था, सारे देश में प्रसिद्ध चित्रकार था। राजा ने कहा एक साधारण से मुर्गे का चित्र बनने में तीन साल! उस बूढ़े ने कहा चित्र बनाना तो बहुत आसान है, मुर्गे को जानना बहुत कठिन है। मुर्गे को जानना बहुत कठिन है। मुर्गे की आत्मा को इंबाइब करना बहुत कठिन है। मुर्गे के साथ एक हो जाना बहुत कठिन है। और जब तक मैं मुर्गे से साथ एक न हो जाऊं, आत्मैक्य न हो जाए, जब तक मेरा उससे मिलन न हो जाए, तब तक मैं कैसे जानूं कि मुर्गा भीतर से क्या है? बाहर से जो दिखाई है, रंग रेखा उनसे कोई मुर्गे को नहीं पहचान सकता। मुर्गा भीतर क्या है।

सब है बात। अगर गांधी को आप ऊपर से देखें तो पहचान सकते हैं कि भीतर क्या है? ऊपर से तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता। आपको बंबई के रास्तों पर मिल जाए तो क्या पहचान लेंगे कि भीतर क्या है? जीसस क्राइस्ट आपको मिल जाए, पहचान लेंगे भीतर क्या है? आदमी ऊपर से दिखायी पड़ेगा, रूप दिखायी पड़ेगा, रंग दिखायी पड़ेगा, शक्ल दिखायी पड़ेगी? और क्या दिखाई पड़ेगा? ये तो प्रतीक हुए, लेकिन भीतर यह आदमी क्या है? कैसे दिखाई पड़ेगा?

उस बूढ़े ने कहा, बहुत मुश्किल है, आदमी का चित्र भी बनाना होता तो भी आसान था क्योंकि मैं भी एक आदमी हूं, भीतर से जान सकता हूं कि आदमी क्या होता है? लेकिन मुर्गा? मैं मुर्गा नहीं हूं। मुर्गा भीतर से कैसा अनुभव करता है, उसकी आत्मा क्या है, यह मैं कैसे जानूं? राजा ने कहा, कोशिश करें, चित्र तो जल्दी चाहिए। वह बूढ़ा जंगल में चला

गया। छह महीने बीत गए तो राजा ने आदमी भेजे कि पता लगाओ, वह बूढ़ा जिंदा है या मर गया। छह महीने हो गए, कोई खबर नहीं आयी। आदमी गए तो देखा, जंगली मुर्गों के बीच में वह बूढ़ा बैठा हुआ था चुपचाप छह महीने बीत गए। वह जंगली मुर्गों की भीड़ में बैठा था चुपचाप। निरीक्षण करता था, आब्जर्व करता था, शायद आत्मैक्य के लिए कोई उपाय करता था। उसने लोगों को हटा दिया और कहा, जाओ, बीच में बार-बार बत आना। तुम्हारे आने से बाधा पड़ती है। मुझे याद आ जाता है कि मैं आदमी हूं। और जैसे मुझे याद आता है, मुर्गा मेरे हाथ से छूट जाता है। तुम यहां बार बार मत आना। तीन साल बाद मैं आ जाऊंगा। तुम्हें बीच बीच में देखता हूं तो मुझे फिर याद आ जाता है कि मैं आदमी हूं। छह महीने में मैंने कोशिश की थी कि मैं मुर्गा हूं। वह भूल जाता है, वह हाथ से छूट जाता है। तीन साल बाद लोग गए। उस बूढ़े को तो पहचानना मुश्किल हो गया। वह तो एक पहाड़ी किनारे खड़े होकर मुर्गे की आवाज, उससे निकल रही थी। उन्होंने उसे जाकर हिलाया और कहा, यह क्या हो गया? आपसे मुर्गे की आवाज निकल रही है? उस बूढ़े ने कहा, आ गया पकड़ में मुर्गा। इन तीन सालों में सब शब्द छोड़ दिए थे। इन तीन सालों में मुर्गे को मैं जानता हूं, यह खयाल छोड़ दिया। डूब गया उसके साथ, एक हो गया। अब चलता हूं। राजा के दरबार में जाकर खड़ा हुआ और उसने मुर्गे की आवाज में बाग दी। राजा ने कहा, पागल हो गए हो मालूम होता है। हमने बुलाया था चित्र, तुम मुर्गा बन जाओ नहीं कहा था। चित्र कहां है?

उस कलाकार ने कहा, चित्र तो अब एक क्षण की बात है। सामान बुला लें, मैं चित्र यहीं बना दूंगा। लेकिन अब मैं जानकर लौटा हूं कि मुर्गा भीतर से क्या है, कैसा है। मैं उसके साथ एक होकर लौटा हूं। क्षण भर भी नहीं लगा। सामान और उसने चित्र, बनाकर सामने रख दिया। हाथ उठा कर लकीर खींच देनी थी। और राजा ने कहा, एक मुर्गा ले आओ। मुर्गा आया, दरवाजे पर ही उसने देख कि चित्र है। उसने खड़े होकर...युद्ध के भास से खड़ा हो गया। मुर्गे ने पहचान लिया कि सामने एक मुर्गा है। राजा ने कहा, जी गए तुम। माप दंड पूरा हो गया। मैं तो सोचता था कि मुर्गा क्या पहचानेगा कि चित्र मुर्गे का है!

ये जो हमारे शब्द हैं--गुलाब का फूल, जूही का फूल, सूरज पत्नी बेटा, मां, बाप ये शब्द बीच में खड़े हो जाते हैं और फिर किसी से भी एक नहीं होने देते। दूसरों की बात तो अलग, यह आत्मा हूं मैं, परमात्मा हूं मैं, ब्रह्म हूं, अहं ब्रह्मास्मि, ये शब्द बीच में खड़े हो जाते हैं। स्वयं से भी एक नहीं होने देते। जिससे हम एक हैं, उससे भी बीच में दीवार खड़ी कर देते हैं। विचारक शब्दों का धनी होता है, और इसलिए विचारक सत्य को कभी हनीं जान पाता। सत्य को वे जान पाते हैं--स्वयं के सत्य को--मैं कौन हूं, इस जीवन की प्राथमिक समस्या को वे लोग जाने पाते हैं जो सारे शब्दों को छोड़कर निःशब्द में प्रवेश करते हैं।

शब्द को कैसे छोड़ा जा सकता है? बड़ी कठिनाई है। चौबीस घंटे हम शब्दों में जीते हैं, सोते हैं तो शब्दों में, जागते हैं तो शब्दों में एक छोटा सा शब्द, और हमारा हृदय खिलकर एक फूल बन जाता है। और एक छोटा सा शब्द, और हमारा क्रोध का जागरण हो जाता है। हृदय

एक अंगार बन जाता है। एक छोटा सा शब्द और हम दुखी हो जाते हैं। एक छोटा सा शब्द, और हम आकाश में मरने लगते हैं। हमारा सारा जीवन शब्दों का हैं, सारा जीवन शब्दों का है। जागते हैं तो शब्दों से, सोते हैं तो शब्दों से। रात भर शब्द फिर शुरू हो जाता है। जैसे किसी झील के ऊपर छा गयी हो, पत्ते ही पत्ते फैल गए हों, पूरी झील ढक गयी हो, कुछ दिखायी न पड़ता हो ऐसे ही शब्दों ही शब्दों में हमारी पूरी चेतना ढक गयी है, और कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता है, सिवाय शब्दों के कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता है। आप भीतर जाइए और शब्द ही शब्द मिलेंगे। इन शब्दों के छूटे बिना कोई स्वयं का नहीं जान सकता है। लेकिन हमारी सारी शिक्षा शब्दों की शिक्षा है। सारा समाज शब्दों पर जीता है। सारा जीवन शब्दों की संपदा का व्यापार करता है। निःशब्द की तो कोई संभावना नहीं, कोई मौका नहीं। शून्य हो जाने को, शब्द से मुक्त हो जाने का कोई अवसर नहीं है। जब तक यह अवसर हम न जुटा लें, तब तक हमें पता नहीं चल सकता कि मैं कौन हूं? जीवन क्या है?

यह कैसे होगा? दो बातें समझ लेनी जरूरी है। पहली बात--शब्द को हम किसी भांति सीखते हैं? इस सूत्र को समझ लेना जरूरी है, तो हम यह भी सीख सकते हैं कि शब्द को कैसे भुला जा सकता है।

एक सुबह बुद्ध अपने भिक्षुओं के बीच बोलने गए लोगों ने देखा वे अपने हाथ में एक रेशमी रूमाल लिए हुए हैं। वे जाकर बैठ गए। बैठकर उन्होंने रूमाल खोला, उसमें एक गांठ लगायी, फिर दूसरी गांठ लगाई, फिर तीसरी गांठ लगाई, फिर और गांठें लगायी। पूरा रूमाल गांवों से भर गया। भिक्षु चुपचाप देखते रहे कि वे क्या कर रहे हैं। फिर उन्होंने कहा, भिक्षुओं मैं रूमाल लेकर आया था, और उसमें कोई गांठ न थी। अब रूमाल में गांठें ही गांठें लग गयी है। मैं तुमसे पूछता हूं, यह वही रूमाल है, या दूसरा रूमाल है? एक भिक्षु ने कहा कि एक अर्थ में तो वही रूमाल है क्योंकि गांठ लगने से रूमाल में कोई खास फर्क नहीं पड़ गया है।

और एक अर्थ में रूमाल में बदलाहट हो गयी है। पहला रूमाल सीधा साफ था, इसमें गांठें पड़ गयी हैं।

बुद्ध ने कहा, मनुष्य की चेतना भी ऐसी ही है। शब्दों की गांठें पड़ जाती है चेतना पर, लेकिन वही है, फिर भी फर्क हो गया। रूमाल में गांठें लगी हैं, तो रूमाल व्यर्थ हो गया। उपयोग नहीं किया जा सकता, उसे खोला नहीं जा सकता। रूमाल वही है, गांठों लगा रूमाल व्यर्थ हो गया। उसे खोला नहीं जा सकता, उसका उपयोग नहीं किया जा सकता। इसलिए फर्क भी पड़ गया और फर्क नहीं भी पड़ा। मूलतः तो रूमाल वैसा का वैसा है, लेकिन उपयोगिता भिन्न हो गयी। फिर बुद्ध ने पूछा, मैं यह पूछता हूं, इन गांठों को कैसे खोला जाए? क्या मैं इस रुमाल को खींचूं? उन्होंने रूमाल खींचा, गांठें ओर छोटी हो गई, और मजबूत हो गयीं, एक भिक्षु ने कहा, अगर आप रुमाल खींचते ही गए तो गांठें और मजबूत हो जाएंगी, खुलेंगी नहीं।

हम जीवन भर शब्दों की गांठें और खींचते चले जाते हैं, वह और मजबूत होती चली जाती है। बुद्ध ने कहा, तो मैं कैसे खोलूं? तब एक भिक्षु ने कहा, इसके पहले कि मैं कुछ कहूं कि रूमाल कैसे खुलेगा, मैं यह देखना चाहूंगा कि गांठें बांधी कैसे गयी हैं, क्योंकि जिस भांति बांधी गयी हों, उल्टे रास्ते से चलने से खुल जाएंगी। बुद्ध ने कहा, यह भिक्षु ठीक कहता है। गांठ कैसे बांधी गयी है, जब तक यह न जान लिया जाए तब तक गांठ खोली नहीं जा सकती। यह भी हो सकता है, खोलने की कोशिश में गांठ और मजबूती से बंध जाए।

मनुष्य के मन पर शब्दों की गांठ कैसे बंधु गयी है यह जानना जरूरी हो तो खोलने का रास्ता साफ हो जाता है। जिस रास्ते से चल कर आप इस भवन तक आए हैं, उल्टे चलेंगे तो आप अपने घर पहुंच जाएंगे। जिस रास्ते से गांठ बंधती है, उल्टे जाएंगे तो गांठ खुल जाएगी। यह शब्दों ने मनुष्य के मन को ऐसा जकड़ रखा है...।

कैसे जकड़ रखा है? क्या है प्रक्रिया की? लघनग की प्रक्रिया क्या है? तो अनलघनग की प्रक्रिया उल्टी प्रक्रिया होगी। तो मैंने कहा, छोटा बच्चा सीखता है। कैसे सीखता है? वह कहता है, सी ए टी कैट, कैट यानी बिल्ली, दोहराता है दोहराता है दोहराता है। रिपीट करता है, रिपीट करता है, पुनरिक्त करता है। पुनरुक्ति माध्यम है शब्द की गांठ बांधने का। जितना किसी चीज को दोहराए, दोहराए, उतना शब्द की गांठ मन पर बैठती चली जाती है। पुनरुक्ति द्वार है, रास्ता है, मैथड है लघनग का, शब्दों को सीखने का रास्ता है पुनरिक्त, रिपीटीशन। स्मृति खड़ी होती हैं पुनरिक्त से। तो अनुपरुक्ति से गांठ खुल सकती है, अनलघनग से शब्द भूल जा सकते हैं।

हम पुनरुक्ति तो सीख गए, बचपन में लेकिन अपुनरुक्ति हम नहीं जानते हैं कि क्या करें, क्या करें, क्या करें। एक छोटा-सा खयाल समझ में आ जाए तो अपुनरुक्ति का रास्ता समझ में आ सकता है। अनलघनग का मैथड समझ में आ सकता है। और जीवन के सत्य को जानने के लिए उसके अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं है।

श्री रमण से आकर किसी ने पूछा, एक जर्मन विचारक ने कि मैं क्या करूं, मैं क्या सत्य को कैसे सीखूं? हाऊ टु लर्न टी ट्रूथ? श्री रमण ने कहा, बात ही गलत पूछते हो। सत्य को सीखा नहीं जाता। इसलिए यह मत पूछो, हाऊ टू लर्न दी ट्रूथ। यह पूछो, हाऊ टू अनलर्न दी अनट्रूथ? यह मत पूछो कि सत्य को कैसे सीखें, इतना ही पूछो की असत्य को कैसे भूलें? असत्य अनलर्न हो जाए तो सत्य प्रकट हो जाता है। झील के पत्ते अलग कर दिए जाएं तो झील प्रकट हो जाती है। पर्दा अलग कर दिया जाए तो प्रकाश सामने आ जाता है। द्वार खोल दिया जाए तो हवाएं भीतर प्रविष्ट हो जाती हैं। यह मत पूछो कि हवाओं को कैसे भीतर लाएं, यही पूछो कि द्वार कैसे खोले? यह मत पूछो कि प्रकाश कहां खोजें, यही पूछो कि आंख कैसे खोलें। श्री रमण ने कहा, पूछो कि अनलर्न कैसे करें? जो सीख लिया है, उसे भूलें कैसे? चेतना को वापस सरल और शुद्ध कैसे करें? यही प्रश्न सबके सामने है।

हम सीख कर बैठ गए हैं। एक शब्द को भी भुलाना चाहे तो भुलाना कठिन है और असंभव है। बल्कि जिस शब्द को आप भुलाना चाहें वह और भी स्मरण में वापस लौटने लगेगा। की

होगी आपने भी कभी कोशिश। किसी चेहरे को आप भुला देना चाहते है। किसी स्मृति को भुला देना चाहते हैं और परेशान में पड़ जाते हैं। जितना भुलाना चाहते हैं। उतना स्मृति वापस आने लगती है। आपको खयाल नहीं है कि भुलाने की कोशिश रिपीटीशन है। भुलाने की चेष्टा में पुनरुक्ति शुरू हो गयी। आप बार-बार भुलाना चाहते हैं किसी चीज को, उसका बार-बार आपको स्मरण करना पड़ता है और बार-बार स्मरण करने से वह और मजबूत होती चली जाती है।

एक फकीर के पास एक युवक गया था और उसने कहा, मुझे कोई मंत्र दे दें मैं सिद्ध करना चाहता हूं। फकीर ने बहुत समझाया कि मेरे पास कोई मंत्र नहीं, कोई सिद्धि नहीं, लेकिन युवक माना नहीं। पैर पकड़ लिए। जितना इंकार किया फकीर ने, उतने ही पैर पकड़े। आदमी की आदत ऐसी है, जहां इंकार हो, वहां उसका आकर्षण बढ़ता है। जहां कोई बुलाए, वहां समझता है, बेकार है, कोई सार नहीं है। जिस दरवाजे पर लिखा है, यहां मत झांको, वहां उसका मन झांकने का होता है। जहां लिखा है, यहां झांकते हुए जरूर जाना वहां सोचता है, कुछ व्यर्थ होगा। झांकने की कोई जरूरत नहीं है।

फकीर इंकार करने लगा। जितना इंकार करने लगा उतना उसका आकर्षण बढ़ने लगा कि जरूर कोई बात है, जरूर कोई बात है, जरूर कोई बात है; आखिर फकीर परेशान हो गया, उसने एक कागज पर लिख कर मंत्र दे दिया और कहा, इसे ले जाओ, रात के अंधेरे में स्नान करके एकांत में बैठ जाना। पांच बार इस मंत्र को पढ़ लेना। तुम जो चाहोगे, वह सभी तुम्हें मिल जाएगी। वह युवक तो भागा। वह भूल भी गया कि धन्यवाद देना भी कम से कम जरूरी था। वह सीढ़ियां उतर ही रहा था तब उससे फकीर ने कहा, जरा ठहरो, एक शब्द बताना भूल गया। बढ़ना तो मंत्र, लेकिन बंदर का स्मरण मत करना उस समय, अन्यथा सब गड़बड़ हो जाएगा।

उस युवक ने कहा, बेफिकर रहो, जिंदगी बीत गयी, आज तक मैंने बंदर का स्मरण नहीं किया क्यों करूंगा? लेकिन पूरी सीढ़ियां भी उतर नहीं पाया था कि बंदर दिखायी पड़ने शुरू हो गए। उसने आंख मिची, कोशिश की, लेकिन आंख खोलता है तो उसे बंदर का खयाल, आंख बंद करता है तो बंद का खयाल। घर पहुंचा तो वह घबड़ा गया। अब कोई स्मरण ही नहीं है, सिर्फ बंदर का स्मरण रह गया। बहुत नहाता है, बहुत धोता है, भगवान की याद करता है, लेकिन हाथ जोड़ता है भगवान नहीं दिखायी पड़ता है, वहां बंदर ही बंदर दिखाई पड़ते हैं। रात हो गई और बढ़ने लगे। मंत्र पढ़ने का समय करीब आने लगा और बंदरों की भीड़ इकट्ठा हो गयी। आंख बंद करता है तो कतारबद्ध बंदर खड़े हैं, वे दांत चिढ़ा रहे हैं, वे झपटने को तैयार है। वह तो पागल होने लगा। उसने कहा, हे भगवान यह क्या हुआ? आज तक बंदर मुझे कभी याद नहीं आए, उनकी याद कैसे आने लगी? रात बीत गयी, कई बार स्नान किया कई बार कागज हाथ में उठाया, लेकिन बंदर पीछा नहीं छोड़ते हैं। सुबह तक घबड़ा गया। सुबह तो मस्तिष्क घूमने लगा चक्कर खाने लगा। भागा हुआ गया फकीर के पास और कहा, आप अपना मंत्र सम्हलो, अब अगले जन्म में यह साधना हो सकेगी, इस

जन्म में नहीं। और बड़ नासमझ मालूम पड़ते हो। अगर यह कंडीशन थी कि बंदर के स्मरण से मंत्र खराब हो जाता है तो कम से कम कल न बताते, आज बता देते तो पार हो जाती बात। रात दुनिया का कोई जानवर याद न आया। रात कोई धन याद न आया, कोई स्त्री यान न आयी, कोई मित्र याद न आया, कोई शत्रु याद न आए, बस एक स्मृति रह गयी--बंदर, बंदर, बंदर। उस फकीर ने कहा, मैं नया करूं, इस मंत्र की शर्त ही यही है। यह शर्त कोई पूरी करे तो मंत्र सिद्ध होता है।

क्या हुआ होगा उस व्यक्ति को? जिन चीज को निकालना चाहता था, बार-बार निकालना चाहता था वह चीज पुनरुक्त होती चली गयी, वह रिपीट होती चली गयी, उसकी स्मृति गहरी होती चली गयी, वह मन में बैठती चली गयी।

शब्द को निकालने की कोशिश से कभी आप शब्द के बाहर नहीं हो सकते। विचारा को निकालने के प्रयास से कभी आप निर्विचार नहीं हो सकते। शांत होने की कोशिश कभी आप शांत नहीं हो सकते, सोने की कोशिश से कभी आप सो नहीं सकते। कभी देखा, आपको नींद न आ रही हो और आप कोशिश कर रहे हैं कि मैं सो जाऊं। जितनी आप कोशिश करते हैं, नींद उतनी दूर होती चली जाती है। जितनी आप कोशिश करेंगे, उतने ही शब्द गहरे होते चले जाएंगे। इसलिए दुकान पर एक आदमी ज्यादा शांत होता है, मंदिर में जाता है तो और अशांत हो जाता है। पूजा करने आता है तो पाता है, न मालूम क्या-क्या आने लगा! जो कभी नहीं आता वह भी पूजा में क्यों आता है? पूजा करने को बैठने का संकल्प उसका यह है कि मन शांत रहे, विचार न आए, बुरे विचार न आए। तो फिर वही आने शुरू हो जाते हैं जिनको वह कहता है, मत आओ, क्योंकि जिसको वह कहता है, उसी के प्रति वह आकर्षण जाहिर कर देता है। यह निमंत्रण हो जाता है।

तो हम आमतौर से, न कभी शांत होता है, न कभी निर्विचार होते हैं। तो कैसे निःशब्द होंगे? साइलेंस कैसे आएगा। और उसके बिना कोई शब्द का, उसके बिना कोई सत्य का अनुभव न कभी हुआ है, न कभी हो सकता है। रास्ता है, और बड़ा सरल है। विचार को पुनरुक्त न करें। लेकिन पुनरुक्त न करने की विधि है, विचार को आब्जर्व करें, निरीक्षण करें। शब्द का निरीक्षण करें और आप हैरान रह जाएंगे, जिस शब्द का आप निरीक्षण करने का आप तय कर लेंगे। वही शब्द आपकी आंखों से विलीन हो जाएगा। आपको खयाल भी नहीं होगा। आपकी पत्नी है। तीस साल से आपके पास है। उसको आपने इतना प्रेम किया है, लेकिन कभी एकांत में बैठकर उसकी शक्ल आपने स्मरण की है? कभी एकांत में आपने खयाल किया है कि आपकी पत्नी का चेहरा कैसा है? आप कहेंगे, मैं जानता हूं, बिलकुल मुझे याद आ जाएगा। मैं आपसे कहता हूं, आज ही आप जाकर कोशिश करना, और जितना आप निरीक्षण करने की कोशिश करेंगे उतना आप पाएंगे कि सब धीरे-धीरे फीका होता जाता है। पत्नी का चेहरा भी पकड़ा जा सकता। पति का चेहरा भी आबर्जवेशन के सामने नहीं टिकेगा। बाप का, मां का, जिनसे आप इतने परिचित हैं, जिनको आपने जीवन भर देखा है, कभी आंख बंद करके कोशिश करें कि मैं अपनी पत्नी, अपने पिता, अपने पति, अपने

बेटे का पूरा चित्र अपनी आंख के सामने ले आऊं। आब्जर्व करें, निरीक्षण करें, आप आएंगे कि रेखाएं धुंधली हो गयी। चेहरा पकड़ में नहीं आता कि मेरे पिता का चेहरा ऐसा है। थोड़ी देर में आप पाएंगे, चेहरा विलीन हो गया, वहां खाली जगह रह गयी, यहां कोई चेहरा नहीं है।

मन की एक खूबी है कि चेतना जिस को भी निरीक्षण करना चाहे, आब्जर्व करना चाहे, वही शब्द तिरोहित हो जाता है। और जिस शब्द को भुलाना चाहे वही शब्द वापस लौट आता है। शब्द को भुलाने की कोशिश नहीं, शब्द का निरीक्षण, आर्ब्जवेशन, चित्त में जो भी शब्द उठते हैं, उनका निरीक्षण, मात्र देखना, जस्ट सीइंग--और आप हैरान रह जाएंगे कि आपके निरीक्षण के प्रकाश में शब्द कैसे ही हवा हो जाते हैं जैसे सूरज के निकलने पर वृक्षों के ऊपर पड़े हुए ओस के बिंदु उड़ने लगते हैं। सूरज निकला और ओस के बिंदु उड़ने लगे, तिरोहित होने लगे, भागने लगे समाप्त होने लगे। जैसे ही आपकी चेतना पूरे ध्यान से शब्दों को देखने की कोशिश करती है, शब्द उड़ने लगते हैं, हवा होने लगते हैं। और एक बार आपको यह सीक्रेट खयाल में आ जाए, यह रहस्य खयाल में आ जाए कि शब्द को देखने से शब्द की मृत्यु हो जाती है। उस दिन आपने अनलघनग का, भूल जाने का राज, रहस्य अनुभव कर लिया। और जिस आदमी को यह रहस्य मिल जाता है। वह ध्यान को उपलब्ध हो जाता है। ध्यान का और कोई अर्थ नहीं है। मेडीटेशन का और कोई अर्थ नहीं है। ध्यान है शब्दों की मृत्यु और शब्दों की मृत्यु प्रक्रिया है। आबजर्वेशन, अवेयरनेस, कांसेसनेस। किसी भी शब्द के प्रति पूरे सचेतन हो जाए, शब्द विलीन हो जाएगा।

एक गुलाब गुलाब के फूल के पास आप खड़े हैं। आपको खयाल आता है, यह गुलाब का फूल है। बस बाधा पड़ गयी। फूल उन तरह रह गया, बीच में शब्द आ गया। अब जरूरी है कि शब्द को हटा दें बीच से ताकि फूल से संबंध हो सके। आंख बंद कर लें और यह गुलाब का फूल है, इस शब्द पर ध्यान ले जाए, पूरा निरीक्षण ले जाए, और इस शब्द को पकड़ने की कोशिश करें कि रुक जाओ। यह गुलाब का फूल है। इस शब्द को मैं पूरी तरह देख लेना चाहता हूं। रुक जाओ, भागो मत। आप थोड़ी देर में पाएंगे कि वह रुका हुआ शब्द इवेपोरेट होने लगा, उड़ने लगा, भागने लगा। वह शब्द भाग जाए, फिर आंख खोलकर गुलाब के फूल को देखें। और फिर खयाल आ जाए कि यह गुलाब का फूल है, फिर आंख बंद कर लें, फिर उस शब्द को निरीक्षण करें। जब तक कि आप बिना शब्द के फूल को देखने में समर्थन हो जाए तब तक इस प्रक्रिया को जारी रखें। आप थोड़े ही दिन के प्रयोग में उस जगह पर पहुंच जाएंगे जहां आपकी आंख गुलाब के फूल को देखेगी लेकिन आपकी स्मृति नहीं कहेगी कि यह गुलाब का फूल है। सिर्फ देखते हुए आप रह जाएंगे। बीच में कोई शब्द नहीं उठेगा। और जिस दिन निःशब्द दर्शन हो जाता है उस दिन गुलाब के फूल से आपकी आत्मा एक हो गयी। उस दिन आप जानेंगे कि क्या है गुलाब का फूल। उस दिन आप जानेंगे कि उस चित्रकार ने क्या जाना होगा कि मुर्गा होना क्या है। उस दिन आप जानेंगे, सूरज क्या है।

उस दिन आप जानेंगे, चांदनी क्या है। उस दिन आप जानेंगे पत्नी क्या है, पिता क्या है, मित्र क्या है।

और जिस दिन आपको निःशब्द दर्शन की यह संभावना स्पष्ट होने लगेगी, उस दिन इसका अंतिम प्रयोग स्वयं पर किया जाता है। तब निःशब्द होकर अपने को देखा जा सकता है। और उस दिन आप जानेंगे कि मैं कौन हूं? उस दिन जीवन की पहली और बुनियादी समस्या हल होती है कि मैं कौन हूं? और जिसके समक्ष यह समस्या हल हो जाता है उसका जीवन व एक बिलकुल अभिनव, एक बिलकुल नया जीवन हो जाता है। उसके जीवन में आमूल क्रांति हो जाती है। उसके जीवन में क्रोध की जगह क्षमा का जन्म हो जाता है। उसके जीवन में घृणा की जगह प्रेम का जन्म हो जाता है। उसके जीवन में भय की जगह अभय का जन्म हो जाता है। उसके जीवन में कांटे विलीन हो जाते और फूल खिल जाते हैं। उसके जीवन में अर्थहीनता हो जाती है, सार्थकता पैदा हो जाती है। फिर उसे मनोरंजन की तलाश नहीं होती। फिर वह चौबीस घंटे तक आनंद की थिरक में नाचता रह जाता है। फिर श्वास-श्वास, फिर कण-कण, फिर उठना और बैठना सभी प्रभु का कृत्य हो जाता है। फिर सब कुछ ए आनंद में बदल जाता है। फिर ऐसा जैसे जीवन के आनंद-सागर में कोई बह जाता हो। सब तरफ फिर रोशनी दिखायी पड़ने लगती है और बस तरफ फिर सुगंध का अनुभव होने लगता है। और सब तरफ प्रभु भी छवि दिखायी पड़ने लगती है। फिर एक पत्ते में भी सारे विराट विश्व के दर्शन हो जाते हैं। फिर वैसा व्यक्ति जब एक फूल को देखता है--गुलाब के फूल को देखता है, तो उसे गुलाब का फूल नहीं दिखायी पड़ता, फूल के पीछे की शाखाएं फिर शाखाओं के नीचे की जड़ें, और जड़ों से जुड़ी हुई पृथ्वी। फिर फूल पर आयी हुई सूरज की किरणें, और सूरज जब संयुक्त दिखायी पड़ने लगता है फिर वह प्रविष्ट हो जाता है विराट में और सारे जीवन का दर्शन उसे शुरू हो जाता है।

लेकिन हम तो अपने को नहीं जानते, विराट जीवन को कैसे जान सकेंगे? और जब हम अपने को नहीं जानते तो हम और क्या जान सकेंगे। जब हम अपने से भी अज्ञान हैं, अपने से भी अजनबी स्ट्रेंजर हैं तो हम और किससे परिचित हो सकेंगे? यह सारा जीवन हमारा अपरिचित छूट जाता है क्योंकि हम अपने से ही अपरिचित है, और जो विराट संपदा मिल जाता है क्योंकि हम अपने से ही अपरिचित है, और जो विराट संपदा मिल सकती थी, सौंदर्य की, सत्य की, आनंद की, उस सबसे हम वंचित रह जाते है। यह वंचित रह जाने के लिए और कोई जिम्मेवार नहीं है। अगर मैं वंचित रह जाता हूं तो मैं ही जिम्मेवार हूं। यह दोष किसी और पर नहीं दिया जा सकता। यह कहना फिजूल है कि आदमी एक व्यर्थ वासना है। अगर आदमी व्यर्थ वासना है तो यह उस आदमी की भूल है। यह मैं आपसे कहना चाहता हूं, आदमी एक सार्थक उपलब्धि है। आदमी एक सार्थक अनुभूति है। आदमी का जीवन अपरिसीम अमृत को अपने भीतर छिपाए हुए है।

जैसे एक वीणा पड़ी हो किसी घर में और कोई बजाना न जानता हो और घर के लोग कहते हों, फेंको इस सामान को, यहां घर में फिजूल जगह घेरे हुए हैं। ठीक हमारे पास जीवन की

वीणा पड़ी है, लेकिन हम उसके तारों से परिचित नहीं है, हमें उसके राज मालूम नहीं हैं। हमें उसका बजाना पता नहीं हैं तो घर में एक बोझ मालूम होता है। कई बार सोचते हैं, फेंक दो इसे। कई बार चूहे कूद जाते हैं, बच्चे कूद जाते हैं। वीणा में खन-खन की आवाज हो जाती हैं। घर में डिसटर्बेस मालूम होता है, नींद टूट जाती है। हम कहते हैं हटाओ इसको व्यर्थ का सामान घर में पड़ा है, शोर-गुल होता है। लेकिन कभी कोई वीणा को बजाने वाला कुशल वहां आ जाए और वीणा पर हाथ रख दे तो सोए तार जाग उठेंगे। निष्प्राण तारों में प्राण पैदा हो जाएगा। घर एक संगीत से गूंज उठेगा। हम कल्पना भी कर सकते थे कि इन तारों में इतना छिपा है।

घर में बीज पड़े हों, कंकड़ पत्थरों जैसे मालूम होते हों बीज। सोचते हैं, फेंक दें इन्हें, क्या अर्थ है, क्या प्रयोजन है? लेकिन हमें पता नहीं, इन बीजों में वृक्ष छिपे हैं। हमें पता नहीं, इन बीजों में फूल छिपे हैं। हमें पता नहीं, इन बीजों में सुगंध छिपी है। काश, कोई माली आ जाए और उन बीजों को बो दे बगिया में, तो हम हैरान रह जाएंगे कि हमने कई बार सोचा था कि फेंक दें इन बीजों को। हमें पता भी नहीं था कि इन ठोस कंकड़ जैसे दिखते बीजों में इतने रहस्य छिपे होंगे, इतने सुनहले फूल उठेंगे, इतनी सुगंध बरेगी, हमें कभी कल्पना भी न थी।

जीवन भी एक वीणा की तरह, जीवन भी एक बीज की तरह है। लेकिन जो उसके राज को खोलने में समर्थ हो जाता है, वह आनंद को उपलब्ध हो जाता है। जो उसके राज को नहीं खोल पाता है वह दुख में जीता है में मरता है। मैं आपसे पूछना चाहता हूं आप दुख में जी रहे हैं, पीड़ा में जी रहे हैं, चिंता में, उदासी में, अंधेर में? तो कोई बौर जिम्मेवार नहीं है सिवाय आपके। और आप चाहें तो आज जिंदगी को फूलों से भर सकते हैं। चाहे तो आज उस वीणा से संगीत पैदा हो सकता है। उस वीणा से कैसे संगीत पैदा हो सकता है, उस संबंध में एक छोटा सूत्र मैंने आपसे कहा है। लेकिन मेरे कहने से कुछ भी नहीं हो सकता उस सूत्र पर आप एक कदम आगे बढ़ जाए तो कुछ हो सकता है।

जीवन एक साधना है। जीवन अन्य के साथ नहीं मिलता जन्म के साथ तो केवल पोटेंशिल, बीज रूप से संभावना मिलती है। जीवन तो अपने हाथ से निर्मित करना होता है। परमात्मा ने एक मौका दिया है आदमी को। जन्म देता है परमात्मा, जीवन नहीं देता। जन्म सिर्फ अपवर्चुनिटी है, अवसर है। जीवन खुद को पैदा करना होता है। और जो खुद के जीवन पैदा करने समर्थ होता है वह आनंद को उपलब्ध होता है। आनंद हमेशा आत्म-सृजन की छाया है, सिर्फ क्रिएशन की छाया है । जब को व्यक्ति अपने जीवन का निर्मित कर लेता है तो आनंद से भर जाता है।

यह मौका है, लेकिन यह मौका खोया भी जा सकता है और हमसे अधिक लोग इस मौके को खोते हैं। आज तक मनुष्य जाति के अधिकतम बीज व्यर्थ ही नष्ट हो गए हैं। मुश्किल से मनुष्य जाति के इतिहास में दस पचास आदमी पैदा हुए हैं। जिनके बीजों में फूल आए,

लेकिन वीणा में संगीत पैदा हुआ है। बाकी लोग ऐसे नष्ट हो गए हैं। एक छोटी-सी कहानी, और अपनी बात मैं पूरी करूं।

एक सम्राट मरने के करीब था। उसके तीन बेटे थे। उसने उन बेटों की परीक्षा लेनी चाही कि किसको वह दे दे सारा राज्य। कौन संभाल सकेगा, कौन मालिक बन सकेगा? उसने कहा, मैं तीर्थ यात्रा पर जाता हूं। मुझे वर्ष दो वर्ष, तीन वर्ष लग सकते हैं। मैं तुम्हारी परीक्षा के लिए एक प्रयोग करना चाहता हूं। उसने एक-एक बोरा फूलों के बीज तीनों बेटों को दे दिए और कहा जब मैं लौटूं तो मैंने जो तुम्हें दिया है वह अमानत रही, वह मुझे वापस कर देना। देखो, वह नष्ट न हो जाए। बड़े बेटे ने सोचा कि ठीक है। कैसी परीक्षा है, क्या पागलपन है! उसने एक तिजोड़ी में ताला लगाकर वह बोरे भर बीज फूलों के बंद कर दिए। उसने कहा, जब वापस लौटेगा तो निकालकर सारा वापस लौटा देंगे। तीन सालों में उन बीजों का वही हुआ जो होना था। सड़ गए और राख हो गए।

दूसरे बेटे ने सोचा, इन बीजों को कहां रखे रहूंगा! कम बढ़ हो जाए, कुछ गड़बड़ हो जाए, इन्हें बेच दूं। जब बाप लौटेगा। फिर खरीदकर एक बोरा बीज दे देंगे। कौन पहचानेगा कि वही बीज है? बीजों में कोई नाम लिखा है, कोई सील लगी है? कौन झंझट सम्हालने की करेगा! उसने बाजार में बीज बेच दिए और रुपए लाकर तिजोड़ी में रख दिए। जब बाप आएगा, बीज खरीदकर वापस लौट दूंगा।

तीसरे लड़के ने कहा, बीज सम्हालने को बाप ने दिए हैं। बीज के सम्हालने का एक ही रास्ता हो सकता है कि बीज को बो दिया जाए। इनमें फूल आ जाएंगे। फिर नए बीज आ जाएंगे। उसने बीज बो दिए। सम्हालकर रखने का पागलपन क्या! इनका फायदा भी ले लो, इनके फूलों की सुगंध भी ले लो! उसने बीज बो दिए, मौसमी बीज थे। चार महीने भी नहीं बीत पाए, बगिया फूलों से भर गयी। सारा गांव प्रशंसा करने लगा। जब बाप तीन साल बाद लौटा तो कोसों तक, मीलों तक महल के आसपास की भूमि फूलों से भरी थी।

बाप ने आकर पूछा अपने बेटों को--बड़े को कि बीज कहां है? उसने तिजोड़ी खोली, वहां से राख और बदबू क्योंकि सब बीज सड़ गए। उसने कहा, यह रखे हैं जो आप दे गए थे। बाप ने कहा, पागल, ये फूलों के बीज थे और इनसे बदबू आ रही है। कौन है जिम्मेवार इस बात के लिए? पहला बेटा हार गया। दूसरे बेटे से कहा, बीज? उसने कहा, मैं अभी जाता हूं। रुपए? निकाले, बाजार से खरीद लाता हूं। बाप ने कहा था, बीज मैंने तुझे सम्हालने को दिए थे, बेचने को नहीं। बेचने को नहीं दिए थे बीज, सम्हालने को दिए थे? दूसरा लड़का हार गया। क्योंकि उसे सम्हालने को दिया गया उसे हम बेच दें।

कुछ लोग पहले लड़के की तरह हैं जिन्होंने जिंदगी के बीज को तिजोड़ियों में बंद कर रखा है। जिंदगी सड़ जाती है और बदबू निकलती है। कुछ लोग दूसरे लड़के जैसे है। जो जिंदगी को बाजार मग बेच रहे हैं--न मालूम कितने-कितने रूपों में। और जिस दिन मौत सामने आएगी वह कहेंगे, हमने जिंदगी बेंच दी। किसी ने धन में बेच दी, किसी ने यश में बेच दी। वे कहेंगे अपन पिता के सामने कि यह धन है, हमने जिंदगी बेच दी। ये तिजोड़ियां हैं,

यह देखो। यह देखो हमारे पद। यह देखो कि मैं मंत्री था, मैं महामंत्री था, वह मैं प्रधान मंत्री था फलां मुल्क का। हमने जिंदगी बेच दी है और यह पद और धन खरीद लिया है। यह सर्टिफिकेट देखो, यह प्रमाण पत्र देखो। यह पदमश्री, राज्यश्री की उपाधियां देखो। हमने बेच दी जिंदगी और यह खरीदकर ले आए। लेकिन उस बाप ने कहा जो कि मैंने सम्हालने को दिया था वह बेचने को नहीं दिया था। और बेचना होता तो खुद बेच देता, तुझे सम्हाल कर देने की जरूरत क्या थी? बीज कहा हैं जो मैंने दिए थे। उसके हाथ में नोटों के रुपए हैं। कागज के रुपए हैं। अब कहां बीज जो फूल बन सकते थे, कहां कागज के नोट जो कुछ भी नहीं बन सकते।

वह तीसरे लड़के के पास पहुंचा कि बीज कहां है मेरे? उसने कहा, बाहर आ जाए। बीज तिजोरियों में बंद नहीं किया जा सकते और न नोटों में बंद किए जा सकते। वह खेतों में फैल गए हैं। बाहर आ गए। मीलों बीजों के फूल गए हैं। फूल हवा में लहरा रहे हैं सूरज की रोशनी में। तितलियां उन पर उड़ रही है और पक्षी गीत गा रहे हैं। और बाप ने कहा, तू अकेला मालिक होने के योग्य है।

परमात्मा भी सबको बीज देता है, जीवन भी। लेकिन कुछ लोग पहले लड़के की तरह हैं, कुछ लोग दूसरे लड़के की तरह। और बहुत थोड़े लोग तीसरे लड़के की तरह बीजों के साथ व्यवहार करते हैं। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं, तीसरे लड़के पर ध्यान रखना। कहीं आप पहले दो लड़कों के जैसे सिद्ध न हों। वह तीसरे लड़के अगर आप हो जाएं तो आपके जीवन की बगिया में भी इतने ही फूल, इतनी ही सुगंध इतने ही गीत गाते पक्षी निश्चित ही पैदा हो सकते हैं। परमात्मा करे आपका जीवन फूलों की एक बगिया बने।

वह कैसे बन सकता है, थोड़ी-सी बात मैंने आपसे कही। आपने मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

बिड़ला क्रीड़ा केंद्र बंबई

दिनांक ७ मई, १९६७ सुबह

नाचो प्रेम है नाच

दान मैत्री और प्रेम से निकलता है तो आपको पता भी नहीं चलता है कि आपने दान किया। यह आपको स्मरण नहीं आती कि आपने दान किया। बल्कि जिस आदमी दान स्वीकार किया, आप उसके प्रति अनुगृहीत होते हैं कि उसने स्वीकार कर लिया। लेकिन अब दान का मैं विरोध करता हूं, जब वह दान दिया जाता है तो अनुगृहीत वह होता है जिसने लिया। और देने वाला ऊपर होता है। और देने को पूरा बोध है कि मैंने दिया, और देने का पूरा रस है और आनंद। लेकिन प्रेम से जो दान प्रकट होता है वह इतना सहज है कि पता नहीं चलता

कि दान मैंने किया। और जिसने लिया है, वह नीचा नहीं होता, वह ऊंचा हो जाता है। बल्कि अनुगृहीत देने वाला होता है, लेने वाला नहीं। इन दोनों में बुनियादी फर्क है। दान हम दोनों के लिए शब्द का उपयोग कर सकते हैं, लेकिन दान उपयोग होता रहा है उसी तरह के दान के लिए, जिसका मैंने विरोध किया। प्रेम से जो दान प्रकट होगा, वह तो दान है ही।

प्रश्न अगर कोई आदमी भूखा मरता हो और उसको खाना खिला दिया तो यह कैसा रहा?

उत्तर--अगर आपको ऐसा खयाल आए कि मैंने खाना खिला दिया तो कोई बड़ा काम कर लिया, तो यह दान पाप होगा। खयाल तो यह आना चाहिए कि कितनी मजबूरी है, कितनी कठिनाई है! अकाल पड़ जाता है, हम कुछ भी नहीं कर पाते। हम दो रोटी दे पाते। हम दो रोटी दे पाते हैं। तो दुखी होना चाहिए कि दो रोटी देने से कुछ से कुछ हो गया है? अगर प्रेम से आप जाएंगे अकाल में काम करने तो आप पीड़ित अनुभव करेंगे कि कितना काम हम पर पा रहे हैं, जो कुछ भी नहीं है। होना तो यह चाहिए कि अकाल संभव न हो, एक आदमी भूखा न मरे। हम कुछ भी नहीं कर पा रहे हैं। आपकी पीड़ा यह होगी कि सब कुछ करते हुए हम कुछ भी नहीं कर पा रहे हैं। लेकिन वह जो दान देने वाला है वह वहां से अकड़ कर लौटेगा कि मैंने इतने लोगों को खाना खिलाया था।

तो दान का बोध ही गलत है। प्रेम से दान निकलता है, वह बात ही अलग है। वह इतना ही सहज है कि उसका कभी भी नहीं चलता। उसकी कोई रेखा ही नहीं छूट जाती कुछ। बल्कि प्रेम से दान निकलता है, हमेशा प्रेमी को लगता है कि कुछ कर पाया।

एक मां से पूछें कि उसने अपने बेटे के लिए क्या किया। वह कहेगी मैं कुछ भी नहीं कर पायी। जहां पढ़ाना था, पढ़ा नहीं पायी, जो खाना खिलाना था वह खिला नहीं पायी, जो कपड़ा पहनाना था वह मैं नहीं पहना पायी। मैं लड़के के लिए कुछ भी हनीं कर पायी। और एक संस्था के सेक्रेटरी से पूछें कि उसने संस्था के लिए क्या-क्या किया? तो वह हजार फेहरिस्त बनाए हुए खड़ा है कि हमने यह किया, हमने यह किया, हमने यह किया। जो उसने नहीं किया उसका भी दावा है कि हमने किया। और मां ने जो किया भी, उसकी भी वह दावेदार नहीं है। वह कहेगी कि मैं कुछ भी नहीं कर पायी।

तो प्रेम के पीछे कभी भी यह भाव नहीं छूट जाएगा कि मैंने कुछ किया। और जिस दान में यह भाव रहता है कि मैंने कुछ किया, उसको मैं पाप कहता हूं। वह अहंकार का ही पोषण है।

तो प्रेम से जो दान निकलेगा, उसकी तो बात ही और है। उसको तो दान कहने की जरूरत ही नहीं है। तो वह निकलता ही रहेगा। प्रेम तो स्वयं ही दान है। लेकिन बिलकुल ही अन्यथा बात है। और यह दान-धर्म की हम इतनी प्रशंसा करते हैं कि दान दो तो पुण्य होगा, दान दो तो स्वर्ग मिलेगा, दान दो तो भगवान तक पहुंच जाओगे, यह शरारत की बात है। इससे कोई मतलब नहीं है। यह उस आदमी के अहंकार का पोषण है। और इस भांति जो दान दे रहा है वह दान-वान कुछ नहीं दे रहा है। वह फिर शोषण कर रहा है, वह अपने स्वार्थ का फिर इंतजाम कर रहा है। आपकी दीनता-दरिद्रता उसे कहीं भी नहीं छू रही है। बल्कि आप

दीन और दरिद्र हैं, इससे वह खुश है। क्योंकि उसे दानी बनने का एक अवसर आप जुटा रहे हैं। सड़क पर एक भिखारी आपसे दो पैसे मांगे, अगर आप अकेले हैं तो आप इंकार कर देंगे, अगर चार आदमी हैं तो आप दे देंगे। क्योंकि चार आदमी देखते हैं कि दो पैसा दिया। चार आदमी के सामने भिखारी को इंकार करना कि नहीं देंगे आपके अहंकार को चोट लगती है। अकेले में आप दुत्कार देंगे। इसलिए भिखारी प्रतीक्षा करता है, अकेले आदमी से नहीं मांगता है, चार आदमी हों तो पकड़ लेता है। क्योंकि इन तीन के सामने आपके अहंकार का उपयोग करता है। अब जरा मुश्किल है, इंकार करना।

प्रश्न--अस्पष्ट

उत्तर--मुश्किल यह है कि जब आप दे रहे हैं तब आप इसलिए दे रहे हैं कि चार लोग देख लें, चार लोगों को पता चल जाए और अगर यह आपकी कंडीशन नहीं है तो उसको मैं दान नहीं कह रहा हूं, उसको मैं प्रेम कह रहा हूं। फिर तो आप यह चाहेंगे कि कोई देख न ले। कोई क्या कहेगा कि दो पैसे भी नहीं हैं एक आदमी के पास? कोई कहेगा क्या? कि एक आदमी ने भीख मांगी और इस आदमी ने दो पैसे दिए। तब आप डरेंगे कि कोई देख न ले, अकेले में चुप-चाप दे देंगे। किसी को कहना मत। पता न चल जाए किसी को। मैं तो कुछ कर ही हनीं पाया, तुम मांग रहे हो। दो पैसे मैं देता हूं यह देना हुआ। और जनरल कंडीशन यह है कि आप प्रतीक्षा कर रहे हैं कि चार लोग जान लें, या अखबार में खबर छप जाए कि इस आदमी ने इतना दिया है। यह मंदिर का पत्थर लग जाए कि इस आदमी ने इतना दिया है, यह नाम खुद जाए। नहीं, यह बिलकुल जनरल कंडीशन है। दान देने वाले के माइंड की यह स्थिति है। तब तो दान चल रहा है हजारों साल से और दुनिया जरा भी कुछ अच्छी नहीं बन पाती।

तो मेरा कहना यह है कि प्रेम बढ़ाना चाहिए, दान इसलिए की बकवास बंद होनी चाहिए। उस प्रेम से जो दान फलित होगा, वह बात ही और है। उसमें फर्क इतना ही है कि जैसे एक नकली फूल आप ले आए बाजार से और असली फल पैदा हुए। उतना ही फर्क है उन दोनों दान में। तो एक की मैं प्रशंसा करता हूं और एक की निंदा करता हूं। तो उनके बीच का फासला बहुत है, फासला बहुत है।

प्रश्न--कुछ स्वर्ग मिल जाए मृत्यु के बाद या अगले जन्म को ऊंचा कर लिया इस प्रकार...?

उत्तर--एक आदमी किसी को दान करता है तो यह सचेतन इच्छा नहीं है उसकी। न उसके इस बात की कोई साजिश का वह हिस्सेदार है कि यह समाज की व्यवस्था बनी रहे। नहीं, यह नहीं कह रहा हूं। समाज का आम जनसमूह जो करता है उसे तो कुछ भी स्पष्ट नहीं है कि वह क्या कर रहा है। समाज का जो आप जनसमूह है वह तो किसी चीज के प्रति अवेयर नहीं है कि वह क्या कर रहा है। लेकिन समाज के ढांचे के जो निर्माता हैं, उसके जो नीति-नियता हैं, वे पूरी तरह से होश में सब कुछ व्यवस्था कर रहे हैं। जिन लोगों ने यह व्यवस्था की कि अगर पति मर जाए तो पत्नी को सती हो जाना चाहिए। उन्होंने यह व्यवस्था नहीं कि कि अगर पत्नी मर जाए तो पुरुष को भी उसके पीछे मर जाना चाहिए।

जिन्होंने व्यवस्था की वे पूरी तरह पुरुष वर्ग की तरफ से व्यवस्था दे रहे हैं। उनका बोध बिलकुल स्पष्ट है कि वह पुरुष की सुरक्षा कर रहे हैं और स्त्री की हत्या कर रहे हैं। लेकिन जो स्त्रियां सती हुई, उनको कुछ भी पता नहीं है। और जिन पुरुषों ने उन स्त्रियों को सती होने की आज्ञा दी उनको भी कुछ पता नहीं है कि यह एक पुरुष की साजिश है, जो स्त्री के खिलाफ चल रही है हजारों साल से।

यह जिन लोगों ने मनु--महाराज जैसे लोगों ने, जिन्होंने व्यवस्था दी कि दान दो, उन्हें बहुत स्पष्ट है समाज की व्यवस्था का हिसाब, कि अगर नीचे का दरिद्र होता चला जाता है और ऊपर के समृद्ध समाज से उसे कोई भी सहारा, काई भी संतोष, कोई भी सांत्वना नहीं मिलती तो यह समाज चार दिन नहीं चल सकता। यह समाज उखड़ जाएगा। इसी वक्त टूट जाएगा यह समाज को अगर चलाना है तो दरिद्र को थोड़ी बहुत तृप्ति देते रहना अत्यंत आवश्यकता है। समाज की जिन्होंने व्यवस्था दी है उनके सामने बहुत स्पष्ट है कि नीचे का जो वर्ग है वहां से विद्रोह की संभावना एकदम स्पष्ट है। अगर संतोष न सिखाया जाए उस वर्ग को क्रांति अनिवार्य रूप से फलित हो जाएगी। इसलिए जिन मुल्कों में इस तरह की व्यवस्था देने का लंबा इतिहास है, वहां कोई क्रांति नहीं हो सकी।

अगर रूस या चीन जैसे मुल्कों में क्रांति हो सकी तो उसके पीछे बहुत से कारणों में एक कारण यह भी है कि धार्मिकता का ऐसा लंबा इतिहास नहीं है जो दरिद्र को दान देने की, दरिद्र की सेवा की और दरिद्र को टुकड़े फेंकने की उसने कोई बहुत व्यवस्था की। उस वजह से...और कारण हैं, उस वजह ने भी हाथ बंटाया। हिंदुस्तान में पांच हजार साल में कोई क्रांति नहीं हुई, किसी तरह की क्रांति नहीं जानी हिंदुस्तान ने। उसका कारण है, यहां जिन्होंने नीति दी है, समाज को, उन्होंने बहुत दूरगामी विचार किया है। साफ बात देख ली है कि नीचे का जो वर्ग है वह आज नहीं कल उपद्रव का कारण होने वाला है। उसके उपद्रव को तोड़ देने के हर तरह के उपाय किए गए। एक उपाय कि उसे संतोष देने की निरंतर व्यवस्था होनी चाहिए। उसका असंतोष कभी इतना न हो जाए तीव्र कि उबल पड़े सौ डिग्री तक वह कभी न पहुंच पाए। वह अठानवे, संतानवे से नीचे उतरता रहे, बार-बार उतरता रहे, वहां न पहुंच जाएं जहां कि उबाल आ जाए--एक। उनको यह समझाने की जरूरत है कि वह दरिद्र है तो इस कारण दरिद्र है कि पिछले जन्मों के उसके पास हैं। अमीर अगर कोई अमीर है तो इसलिए अमीर है कि पिछले जन्म के पुण्य हैं।

ये सारी बातें अगर साफ-साफ हम पूरी की पूरी हम मनुष्य जाति के समाज के विकास को समझें तो हमें दिखायी पड़ जाएंगे कि ये बातें, जिन्होंने नीति की व्यवस्था दी है समाज को, उनकी आंखों में बहुत साफ हैं। इतनी साफ नहीं, जितनी आज हमें हो सकती है। इतनी साफ उनके सामने नहीं होगी लेकिन इसकी झलक उन्हें साफ है। एक सामान्य आदमी को मैं नहीं कह रहा हूं वह दान देते वक्त यह सोचता है कि यह समाज की व्यवस्था बनी रहेगी। लेकिन दान की व्यवस्था समाज की इस व्यवस्था को बनाने में सहयोगी है। अगर उसकी नीति का पूरा का पूरा आधार समाज की व्यवस्था को बचाने के लिए सहयोगी है।

मैं आपको कहूं--न विनोबा सोचते हैं, न गांधी सोचते हैं यह कि वह जो बातें कह रहे हैं वे बातें हिंदुस्तान में किसी भी सामाजिक क्रांति के लिए बाधा हैं। न विनोबा सोचते हैं, न गांधी सोचते हैं। उनकी नीयत पर शक करना आसान नहीं है। वह कतई नहीं सोचते कि वे जो बातें कर रहे हैं वह आने वाले हिंदुस्तान में किसी भी सामाजिक बड़ी क्रांति के लिए बाधा की बातें कर रहे हैं वे नहीं सोचते। स्पष्ट उन्हें नहीं है यह लेकिन जो भी समाज की जीवन अवस्था वे समझते हैं, वे जानते हैं कि उनकी बातें आने वाली सामाजिक कांति के लिए बाधा बन रही है। और हिंदुस्तान का पूंजीशाही वर्ग अगर उनको सहायता देता तो वह जानवर सहायता दे रहा है कि ये बातें रुकावट बनेंगी। अगर अमरीका उनकी सहायता करे तो वह जानवर सहायता कर रहा है कि ये बातें रुकावट बनेंगी। आज अमरीका करोड़पति सारी दुनिया में जिन लोगों को भी सहायता दे रहा है वह यह बात बहुत साफ जानकर सहायता दे रहा है कि बातें आने वाले समाजवाद या साम्यवाद को रोकने के लिए किस तरह से दीवारें बन सकती है। चाहे उन बातों को करने वालों को पूरा साफ न हो...मेरा मतलब यह है कि डायनमिक्स जो हैं समाज के, समाज के सामान्य जीवन के चलने के जो उसूल हैं वह, उसमें की बात मैं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि दान रोकना है, समाज को बचाना है।
संतोष की बातें समाज में क्रांति के लिए बाधा बनता हैं। और जब तक हम दरिद्र को संतुष्ट रख सकते हैं तब तक हम पूंजीशाही को कायम रख सकते हैं। जिस दिन दरिद्र का असंतोष उस सीमा तक पहुंच जाएगा कि वह हमारी दान-दक्षिणा की शरारतों को समझ जाए और उसे दिखायी पड़ जाए कि ये सब बदमाशियां हैं और इनसे कुछ मेरी दरिद्रता मिटती नहीं, न मेरी दीनता मिटती है। बल्कि मेरी दीनता बनी रहती हैं इन्हीं बातों के कारण, एक तो क्रांति किसी समाज में पैदा होती है। वह जो मैंने कहा, एक-एक आदमी के लिए मैं नहीं कह रहा हूं कि वह कांससेसली है कि एक तरफ से वह भिखारी है तो उसे मैं दो पैसा देता हूं तो यह सोचकर देता हूं कि इससे पूंजीवाद बना रहेगा, समाज की व्यवस्था बनी रहेगी--यह कुछ सोचकर नहीं दे रहा हूं। लेकिन मनुष्य का मन चेतन और अचेतन तलों पर उस तरह काम कर रहा है। और उसमें हम सहयोगी बनते हैं।
मैं जो समझ रहा था वह यह कि करुणा अगर गहरी होगी तो उतना आरपार देखेगी। वह इतने पर ही नहीं रुक जाएगी कि इस आदमी को दो रोटी मिल जाएं। इसको दो रोटी दे दें, वह बात दूसरी है इस पर रुक नहीं जाएगी कि यह रोटी दे देने से कुछ कम हो गया है। वह इसकी फिकर करेगी कि यह आदमी दो रोटी मांगने की स्थिति में क्यों आ गया है? इसका चिंतन, इसका विचार, इसको बदलने की चेष्टा उस करुणा से पैदा होती है।
प्रश्न--इसको बदलने के लिए क्या मतलब है।
उत्तर--इस तरह का जो मानसिक इंतजाम है उसे तोड़ने की जरूरत है, तो ही यह टूटेगी। और उस मानसिक इंतजाम का वह हिस्सा है जो मैं कह रहा हूं। कोई भी घटना अगर है तो उस घटना के पीछे कारण है, कारण के पीछे मनुष्य के मन की रचना है। मनुष्य के मन को हमने जिस ढांचे का बनाया है उस ढांचे से वह घटना विकसित हुई है। अगर उस ढांचे

को हमने फिर बदलते तो वह घटना भी नहीं बदलने वाली है। गरीबी आकस्मिक नहीं है। हमारी जो सोचने, समझने जीने के ढंग हैं, उनसे पैदा हुई है। उस सोचने समझने के, जीवने के ढंग हमारे गलत हैं और गरीबी को बनाए रखने में सहयोगी हैं, यही मैं कह रहा हूं। और मैं यह कह रहा हूं कि दान जैसी व्यवस्था, हम सोचते हैं यही कि हम गरीबी पर करुणा करके कर रहे हैं। हो सकता है, करने वाला यही सोच रहा हो। एक-एक व्यक्तिगत रूप से यही सोच रहा हो कि हम करुणा करके यह कर रहे हैं। लेकिन वस्तुतः यह दान देने का दिमाग गरीबी को बचाए रखने का कारण बनता है और अगर हमें गरीबी मिटानी है तो हमें यह दान देने और लेने वाला दिमाग तोड़ देना पड़ेगा। हमें गरीब को तैयार करना पड़ेगा कि वह इंकार कर दे दार लेने को। गरीब को हमें तैयार करना पड़ेगा। कि वह कहे कि हम गरीबी मिटाना चाहते हैं, दान नहीं लेना चाहते हैं। हमें अमीर से कहना पड़ेगा कि यह दार देने की जो तुम बातें कर रहे हो, यह दान देने की बातें सामाजिक जीवन में खतरनाक हैं और यह नुकसान पहुंचा रही है।

अभी विनोबा ने इतना भूदान करवाया। जिस आदमी से दार करवा लेते हैं उस आदमी में कोई फर्क नहीं होता है, वह वही कड़वा आदमी रहता है। वह इधर जमीन दान करता है और कल से सोचता है कि जितनी जमीन दान की है, इस साल मैं कैसे उतना वापस कमा लूं! वह इधर दान देता है, उधार शोषण करता है। उसके शोषण का दिमाग कहीं नहीं जा रहा है। बल्कि, चूंकि वह शोषण करता है इसलिए दार कर पाता है। तो जोड़ा दानी है वह बड़ा शोषक है। तब वह दान कर पाता है। यानी दान करने की कंडीशन यह है कि आप कितना शोषण कर लेते हैं।

और मजा यह है कि हम मिटाना चाहते हैं गरीबी को, और दान देकर मिटाना चाहते हैं। तो हम पागल हो गए हैं। क्योंकि दान आता है शोषण करने से। तब आप दान कर सकते हैं और दान आप उतना बड़ा कर सकते हैं जितना बड़ा आप शोषण कर सकते हैं। तो पहले गरीबी को और गरीब बनाकर शोषण करें, फिर उसको दान करें। एक करोड़ रुपया कमाए और एक लाख रुपया दान करें। यह पूरा का पूरा हमारा सोचने का ढंग बुनियादी रूप से धार्मिक है, और इस चिंतना के चोट पहुंचाने की मैं बातें कर रहा हूं। न मुझे इसकी फिकर है कि सामाजिक रचना में वह किस तरह पैदा हुई। उसकी मुझे बहुत फिकर नहीं है। यह सवाल बहुत बड़ा नहीं है कि गरीबी कैसे पैदा हुई है? बहुत बड़ा सवाल यह है कि गरीबी पांच हजार साल तक कैसे बनी रही? क्योंकि वह जो बने रहने का ढांचा है, वह बना रहने का ढांचा अगर हम तोड़ना शुरू करेंगे तो गरीबी मिटेगी। गरीबी पैदा हुई है निश्चित ही शोषण से पैदा हुई है। बिना शोषण के वह पैदा नहीं हो सकती। और जब पैदा हो गयी हो तो गरीब को संतुष्ट करने के लिए हमें चिंता करनी पड़ती है कि इसको संतुष्ट के। घर में भी आपके--घर में भी आदमी अगर बगावती हो जाए तो आप विचार करने लगेंगे कि उसकी बगावत को कैसे शांत किया जाए। और हजार तरह का इंतजाम कम करेंगे।

अब हिंदुस्तान में गरीबों को शांत करने के लिए हमने कई तरह के उपाय किए हुए हैं। उनमें वर्ग विभाजन, वर्ण व्यवस्था एक थी कि करोड़ों शूद्रों को हमने ऐसा ठहराव दे दिया कि वह अपने कर्मफल का फल भोग रहे हैं। उनको दरिद्रता से, उनकी दीनता से उठने का कोई उपाय नहीं है। अगर वे जी रहा हैं तो हमारी करुणा और कृपा पर जी रहे हैं। वह हमारे टुकड़े जो हम दे रहे हैं, उनके ऊपर उनका जीना है। मजा यह है कि जो टुकड़े दे रहे हैं, उनको हमने समझाया है कि तुम बहुत बड़ा काम कर रहे हो, जो इनको टुकड़े देर रहे हो। और उनको हमने समझाया है कि तुम पर बड़ी कृपा की जा रही है। कि तुम को कुछ दिया जा रहा है। और मजा यह है कि उनका हम पूरे वक्त शोषण कर रहे हैं क्योंकि हमारी व्यवस्था उनको कष्ट में डाल रही है और कष्ट से निकालने के लिए हम दान करने का मजा भी दे रहे हैं। पहले एक आदमी को कुएं में धकेल रहे हैं और फिर उसमें हम रस्सी डाल रहे हैं कि देखो हम तुम पर कृपा करते हैं, तुम बाहर निकल जाओ। न वह उस रस्सी से बाहर निकलता है लेकिन यह उसको पता चलना शुरू हो जाता है कि जो आदमी रस्सी डाल कर हमें बाहर निकाल रहा है। कम से कम इसने हमें धक्का देकर गिराया नहीं होगा। जो ब्राह्मण वर्ग शूद्रों को दान दिलवा रहा है, यह ब्राह्मण तो हम पर कृपा कर रहा है। कम से कम इसने हमारी हालत खराब नहीं कोई होगी, यह तो पता चल जाता है। मजा यह है कि यही वर्ग उसको दान दिलवा रहा है। यही शरारत है, इसी का षडयंत्र है कि वह करोड़ों लोगों को जमीन पर चित्त डाले हुए है और छाती पर आदमी को खड़ा कर दिया है। एक दफा छाती पर आदमी खड़ा हो गा है, उससे उसको दान भी दिलवा रहे हैं। इसके दोहरे परिणाम होते हैं। वह बेचारा छाती पर चढ़ जाता है, उसको धक्का भी नहीं मार पाता है क्योंकि यह दानी है, यह बचाने वाला है। और यह जो सइकोलाजिकल मेकअप इस पर मैं चोट करना चाहता हूं। मुझे उतना प्राब्लम दूसरा नहीं है। हमारा मानसिक बनावट का जो ढांचा है गरीबी को संरक्षण देता है, वह टूटना चाहिए।

जैसे गांधीजी हैं। गांधीजी से मुझे कुछ लेना देना नहीं है लेकिन हमारी तरकीब, जो हमारा पुराना माइंड है उसको बदलते नहीं हैं, उस पुराने माइंड को आगे बढ़ाते हैं। कहेंगे कि दरिद्र नारायण हैं, कहेंगे कि गरीब भगवान का रूप है। इस तरह गरीबों को आप आदर और प्रतिष्ठा देते हैं। गरीबों को आदर और प्रतिष्ठा देने से गरीबी मिटने वाली नहीं है गरीबी को तो घृणा करने से और गरीबी पर क्रोध करने से, यह मानने से कि गरीबी महा पाप है, यह मानने से कि गरीबी महारोग है, तो हम नारायण है, इसकी सेवा करनी चाहिए। फिर तुम वही सेवा और दान और वही बकवास फिर तुम जारी करवा रहे हो जो पांच हजार साल से जारी है। इससे दो फायदे होते हैं--दरिद्र तृप्ति हो जाता है कि हम नारायण हैं और अमीर भी निश्चित हो जाता है कि बड़ी अच्छी बातें कर रहे हैं आप। कुछ दान देना चाहिए, कुछ यह करना चाहिए, कुछ वह करना चाहिए। तो उसकी शोषण की व्यवस्था पर चोट नहीं लगती और दरिद्र को अपनी गरीबी में भी सम्मान मिलने लगता है कि मैं दरिद्र नारायण हूं।

प्रश्न--क्या गांधीजी इन सब बातों को जानकर ऐसा कह रहे हैं?

उत्तर--गांधी जी की कांसेस, नीयत पर जरा भी शक नहीं है। गांधी जानकर ऐसा कर रहे हैं, ऐसा मैं नहीं मानता, लेकिन गांधी जी उसी लंबी साजिश में भूल हुए हैं जो चले रही है। और गांधी उसके सहयोगी हैं, उससे अलग नहीं हैं जरा भी। और हिंदुस्तान जब तक गांधी जी से मुक्त नहीं होता तब तक दरिद्रता से मुक्त नहीं हो सकता है। गांधी जी को मैं गाली नहीं देता। गांधी जी को मैं बुरा कहता नहीं। गांधी जी एकदम भले आदमी है। और शायद बहुत भले हैं इसलिए उस लंबी बेवकूफी के हिस्सेदार हो गए हैं। क्योंकि वह जो पांच हजार साल की लंबी परंपरा है, वह इतने भले आदमी हैं कि उस परंपरा के वे हिस्सेदार हैं, उसके भागीदार हैं।

प्रश्न--क्या मनु महाराज इसके जिम्मेवार हैं।

उत्तर--मनु को हुए इतना लंबा फासला हो गया कि मनु के बाबत कुछ कहना मुश्किल है। लेकिन मनु के कुछ शब्द ऐसे हैं कि ऐसा लगता है कि मनु हिंदुस्तान में ब्राह्मणों का राज्य कायम करने में पूरी तरह सचेष्ट हैं। उनके शब्द ऐसे हैं। उनकी बात ऐसी है वह निश्चित रूप से शूद्र को खड़ा कर रहे हैं और ब्राह्मण को सिर पर बिठा रहे हैं। और वह सारा का सारा वर्ग विभाजन और वर्ण व्यवस्था खड़ी कर रहे हैं। तो मनु तो निश्चित ही हिंदुस्तान में एक विप्र साम्राज्य खड़ा करने का पूरा...।

प्रश्न--कैटेगरी कर रहे हैं।

उत्तर--कैटेगरी लेकिन आज बहुत मुश्किल हो जाता है क्योंकि चार हजार साल पहले, तीन हजार साल पहले कब मनु हुए, आज बहुत मुश्किल हो जाता है। लेकिन जो भी मनु ने कहा है--इधर अभी नीत्शे ने मनु की बहुत प्रशंसा की, सिर्फ इसलिए कि नीत्शे को अपनी आवाज की ध्वनि मनु में मिली। नीत्शे ने कहा है, मनु है दुनिया का सबसे बड़ा लाग्यर क्योंकि उसने यह बताया है, कि कुछ लोग बड़े हैं और सब लोग छोटे हैं। तो नीत्शे ने तारीफ की की। मनु की तारीफ करने वाला इधर तीन सौ वर्षों में सिर्फ नीत्शे है।

कोई आदमी तारीफ नहीं करेगा, लेकिन नीत्शे ने तारीफ की। और नीत्शे के आधार पर खड़ा हुआ फासिज्म पूरा का पूरा। तो मनु ने एक तरफ का फासिज्म खड़ा किया। ब्राह्मणों का। आज कहना मुश्किल है वह कितना सचेष्टा था कि आज तीन हजार साल के बाद बहुत मुश्किल...उसके व्यक्तित्व के बाबत हम बहुत नहीं जानते। लेकिन मनु स्मृति में जो शब्द है वह ऐसा बताते हैं। जैसा वह कहेगा--एक ब्राह्मण को मार डालना एक हजार गायों को मारने का पाप है। एक गाय को मारना एक हजार साधारण मनुष्यों को मारने का पाप है। लेकिन एक शूद्र को मारने पर सिर्फ एक दिन का भोजन दे देना काफी है। यह जो माइंड है, यह जो फर्क कर रहा है, बड़ी अजीब बात है। एक शूद्र को मारने पर एक गऊ के मारने का भी पाप नहीं है। लेकिन एक ब्राह्मण को मारना...! एक ब्राह्मण अगर शूद्र की औरत को ले आए तो क्षम्य है लेकिन ब्राह्मण की और को अगर शूद्र ले जाए तो जन्म-जन्म तक क्षम्य नहीं है। यह जो माइंड है न, नहीं जानकार होने के बाबत कुछ करना मुश्किल है लेकिन मनु का माइंड बहुत साफ कांसपिरेटर का माइंड है, षडयंत्र का माइंड है वह।

प्रश्न--यह तो माना कि वह गुलामी समाज रचना थी।

उत्तर--कैटेग्रीकली। जैसे चारों की हमेशा निंदा करते रहा है धर्म, लेकिन शोषण की कभी निंदा नहीं की हैं किसी धर्मग्रंथ ने आज तक। चोरी की निंदा करते रहे हैं धर्मग्रंथ की चोरी मत करो क्योंकि चोरी है गरीब का कृत्य अमीर के खिलाफ। क्योंकि चोरी तो वह करेगा जिसके पास नहीं हैं और उससे करेगा जिसके पास है। तो चोरी के लिए तो सारी दुनिया के धर्मग्रंथ कहते हैं कि यह पाप है बुरा है। लेकिन कोई धर्मग्रंथ यह नहीं कहता कि संपत्ति का इतना इकट्ठा करना पाप है बुरा है बल्कि वे कहते यह है कि संपत्ति मिलती पुण्य से है। जिसको मिली है संपत्ति उसको पुण्य से मिली है। तो संपत्ति वाले के लिए उनकी दृष्टि है कि वह पुण्यात्मा है इसलिए उसे संपत्ति मिली है और चोरी करने का विरोध है।

यह जो माइंड है चोरी का विरोध करने वाला और शोषण के संबंध में एक शब्द भी विरोध में नहीं कहेगा--यह जो माइंड है...मैं जानता हूं, यह बात सच है कि दो हजार साल पहले यह माइंड पैदा भी नहीं हो सकता था। आप ठीक कहते हैं कि जब उत्पादन के साधन इतने विकसित होंगे, तो आज हम कह सकते हैं वह दो हजार साल पहले कहा भी नहीं जा सकता था। लेकिन वह जो दो हजार साल पहले कह गया था, अगर आज भी हम उसे कहे चले जाते हैं तो क्रांति में बांधा पड़ने वाली है। यह जिम्मा इतना नहीं है कि बुद्ध और महावीर और क्राइस्ट और कृष्ण को हम जिम्मेवार ठहराए कि तुम शोषण करवा रहे हो। लेकिन जो कुछ उन्होंने कहा है, उससे जो माइंड बना है, वह माइंड शोषण को जारी रखेगा। आज उस माइंड को बिना बदले हुए आप कोई क्रांति नहीं ला सकते।

फिर जो उत्पादन की व्यवस्था है, वह भीतर भी अगर आप गौर से समझेंगे तो उत्पादन की व्यवस्था भी आसमान से पैदा नहीं होती है। वह भी मानसिक व्यवस्था से पैदा होती है। आपने क्यों इंडस्ट्रियल क्रांति नहीं कर ली हिंदुस्तान में? वह योरूप में क्या गयी? आपका जो माइंड है वह माइंड कभी इंडस्ट्री पैदा करने वाला नहीं रहा। आपको जो मेकअप है माइंड का...पश्चिम में क्यों संपत्ति इतनी जोर की इकट्ठा हो गयी अमरीका के पास? आपके पास क्यों नहीं हो सकी? आपका जो माइंड है वह दरिद्रता को आदर देने वाला है, वह संपत्ति को कभी उसने आदर दिया नहीं। उसके मन का भाव है कि संपत्ति तो कोई जरूरी बात नहीं है। आदमी तो जितना कम से कम में गुजार दे उतना अच्छा है। जिस कौम का दिमाग यह होगा कि जरूरत कम करो, और वह कभी संपत्ति पैदा नहीं कर सकती। और जब संपत्ति पैदा करने की धारणा ही पैदा न हो तो हम बड़ा उत्पादन की व्यवस्था और मेकेनाइजेशन और सेंट्रलाइजेशन वह कैसे करेंगे? और वही प्रपीच्चल, वही बात गांधी फिर दोहराए चले जा रहे हैं। जब वे चर्खे पर जोर देते हैं तो वह भारत की पुरानी जड़ता है, वह जो दरिद्रता को बनाए रखने की, उस पर फिर जोर दे रहे हैं क्योंकि चर्खा कभी भी किसी मुल्क को संपत्तिशाली नहीं बना सकता है। चर्खे से कोई मुल्क संपत्तिशाली नहीं बन सकता है।

सवाल यह है, हम जिस माइंड की, जिस मेकअप की जो साइका लाजिकल फ्रेम है हमारे दिमाग का, हिंदुस्तान का ऐसे जैसे फ्रेम ऐसा है कि उसे फ्रेम से संपत्ति नहीं पैदा की जा

सकती। तो हम दरिद्र रहेंगे उस फ्रेम को हमें तोड़ना पड़ेगा। हमें कहना पड़ेगा कि कम जरूरतें कोई आदर की बात नहीं है। क्योंकि जरूरतें बढ़े तो आदमी श्रम करता है। और सोचता है कि हम जरूरतों को कैसे पूरा करें? अमरीका आसमान से अमीर नहीं हो गया। तीन सौ वर्षों से उन्होंने फिलासफी पकड़ी है जरूरत को बढ़ाने की, उससे संपदा पैदा हुई है। हम पांच हजार वर्ष से जो फिलासफी पकड़े है जरूरत को कम करने की, उससे दरिद्र हुए हैं। मेरा कहना है, उत्पादन की व्यवस्था में जो क्रांति होती है, वह भी बहुत बुनियाद में आपके मन से आती है।

आपके मन का ढांचा अगर ऐसा है...जैसे कि यहां रह रहे हैं, बंबई में भी एक आदमी रह रहा है, वहीं पास के एक पहाड़ी में एक आदिवासी रह रहा है। मैं दोनों एक ही सेंचुरी में रह रहे हैं। अमरीका में एक आदमी रह रहा है, अफ्रीका में एक आदमी रह रहा है, हम सभी बीसवीं सदी में रह रहे हैं। बस्तर में कोल भील रह रहे हैं, ये सभी इसी सदी में रह रहे हैं जिसमें हम और आप रह रहे हैं। लेकिन यह कोल भील बस्तर का समृद्ध क्यों नहीं हो सका। यह धनी क्यों नहीं हो सका? इसके माइंड का जो फ्रेम है, वह इसको कभी समृद्ध नहीं होने दे सकता है। यह और दस हजार साल ऐसे ही रहेगा, इसमें कोई फर्क नहीं आने वाला है जब तक कि हम इसका मन का फ्रेम नहीं बदल देते। हिंदुस्तान में भी जो आज आपको थोड़ी बहुत प्रगति दिख रही है वह सिर्फ गुलामी का फल है आपको, इससे ज्यादा नहीं। नहीं तो आप दो सौ साल पहले जिस हालत में थे आप उसी हालत में होते। आपका फ्रेम ऐसा दिमाग का। बड़े मजे की बात यह है कि अभी हमको जो थोड़ा बहुत गति दिखायी पड़ रही है सोचने में वह सारी की सारी गति पश्चिम में हम पर आयी है। सारी गति हम पर पश्चिम से आयी है। और हनीं तो हम चर्खे ही कात रहे होते और बैलगाड़ी में ही चल रहे होते। अगर पश्चिम का इम्पैक्ट न हो हिंदुस्तान पर, तो हिंदुस्तान की जो फिलासफी थी, इतनी जड़ भी और उसकी इतनी पुरानी परंपरा थी कि उसको हिलाना मुश्किल था। यह जो थोड़ी बहुत हिलावट पैदा हुई वह सिर्फ इसलिए की पश्चिम के संपर्क ने एक नयी फिलासफी से हमारा संपर्क जोड़ा और हमें पहली दफा दिखायी पड़ा कि अगर यही फ्रेम वर्क में जीते चले आते हैं तो कभी समृद्ध नहीं हो सकते। कोई उपाय नहीं है हमारा।

प्रश्न--अगर आप आने वाले भी, यहां नहीं थे, और मुझे बुलाने वाले भी नहीं थे तो यह तो...?

उत्तर--आप यहां आ गए है। माक्र्स के कहने से कोई सत्य नहीं हो जाती कोई बात। आप यहां आ गए हैं तो आने के पहले यह भौतिक परिवर्तन हुआ आपका शरीर का यहां तक आना। लेकिन आने के पहले आपने आना चाहा है क्योंकि पहले आ गयी है, वह मेंटल फर्क है। आप यहां कैसे आ सकते हैं फिजिकली? एक मशीन ईजाद होती है...

फिजिकल घटना हमेशा पीछे है। जो भी जीवन फर्क आता है। उसके पहले माइंड कंसीव करता है। सीड में, बीज में उसको। उसके बाद वे फर्क होने शुरू होते हैं। अगर माक्र्स ने भी कुछ किया है और कहा...अब थोड़ा देखें, फिजिकल कम्युनिज्म तो माक्र्स के मरने के बहुत

दिन बाद रूस में आया है। लेकिन मेंटल कम्युनिज्म माक्र्स को उसे पचास साल पहले और किसी को पता भी नहीं था कि एक आदमी ब्रिटिश म्यूजियम में बैठकर कम्यूनिज्म को जन्म दे रहा है। वह सड़क से निकलता था तो कोई नमस्कार करने वाला भी नहीं था उसको। कोई पूछने वाला भी नहीं था कि यह आदमी कौन है। यह आदमी माइंड में कम्यूनिज्म की पूरी तस्वीर खड़ी कर रहा है। इसने चालीस साल में कम्युनिज्म की पूरी तस्वीर खड़ी कर दी। यह आदमी मर गया तब भी किसी को पता नहीं था कि दुनिया का एक ऐसा आदमी मर गया है जिसको कि आज नहीं कल, पूरी दुनिया स्वीकार कर लेगी। उसे पचास चालीस साल बाद रूस में फिजिकली घटना घटी कि कम्युनिज्म आया। वह माक्र्स क्या कहेगा, माक्र्स के कहने से क्या होता है? कम्युनिज्म पहले आ गया मेंटली, और पीछे घटना घटी और अब वह आया। कोई भी घटना फिजिकल पर नहीं घट सकती जब तक माइंड से सीड पैदा नहीं होता है।

प्रश्न--लेकिन वह सब काम करने के बाद उन्होंने सोचा कि इसका अंतिम अंजाम...?

उत्तर--सोचेगा पहले, होगा पीछे। और यह जो मैं कह रहा हूं न, माइंड को बदलने का मतलब यह है कि सोचने को हमें पहले बदलना पड़ेगा, फिर कुछ और बदलाहट हो सकती है। जो मैं चोट करता हूं कोई वह इसलिए कि वह जो सोचने का ढांचा है, उसमें थोड़ी भी दरारें पड़ जाए और सोचने का ढांचा बदल जाए तो शायद हम समाज के ढांचे को बदल दें। विचार की प्रक्रिया के परिवर्तन के बिना कोई सामाजिक परिवर्तन नहीं होता है। कोई सामाजिक परिवर्तन नहीं होता है।

आप हैरान होंगे, जिन दो लड़कों ने--राइट ब्रदर्स ने--जिन्होंने हवाई जहाज उनका बाप एक विशप था, पादरी था, और एक दिन चर्च में वह बोल रहा था। और वह जो लड़का पैदा होकर जहाज बनाएगा, वह पत्नी मौजूद थी, चर्च में वह सुन रही थी, वह उसके गर्भ में था। पहला जो बड़ा लड़का था वह गर्भ में था। वह बैठी हुई चर्च में सुनने आयी। वहां घटना घटी, उस विशप ने यह कहा कि भगवान ने हर चीज बना दी है और अब कोई चीज बनाई नहीं जा सकती। सब चीजें गौण हो चुकी है। और उसने प्रश्न पूछा कि क्या तुम ऐसी एकाध चीज का नाम ले सकते हो जो अभी नहीं है, क्या कल तक हो जाएगी? हर चीज सदा से है। एक आदमी ने खड़े होकर कहा, जैसे हवा में उड़ना। तो वह हंसने लगा और सारी चर्च हंसने लगा। उन्होंने का, क्या पागल हो गए हो हवा में पक्षी उड़ते हैं आदमी कैसे उड़ेगा? यह कभी नहीं हो सकता। उसने कहा यह कभी संभव नहीं है कि आदमी हवा में उड़े। यह कैसे हो सकता है? बीस साल बाद उसके ही लड़के ने हवा में पहली दफा उड़ने का प्रयोग किया। और विशप राइट ने, उसके बाद अपनी डायरी में लिखा है कि मैं निंदित हूं अपनी आंखों के सामने। लेकिन यह घटना घट सकी, क्योंकि मेरा लड़का बाइबिल का मानने वाला लड़का नहीं है। यह घटना घट सकी क्योंकि मेरा लड़का बाइबिल को मानने वाला लड़का नहीं है। नहीं तो हर चीज बन चुकी है।

अगर यह उसके माइंड का फ्रेम वर्क हो तो फिर कुछ इनवेंशन नहीं हो सकता। पश्चिम में जो इनवेंशन हुए तीन सौ वर्षों में, उसका कुल कारण इतना है कि पश्चिम के माइंड का जो फ्रेम वर्क था उसने यह मानना शुरू कर दिया कि अभी क्रिएशन समाप्त नहीं हो गया। आदमी को क्रिएशन करना है। भगवान ने वह काम पूरा नहीं कर दिया है। तीन सौ वर्षों में भगवान पर से, और भगवान की जो पुरानी धारणा थी उस पर से जो आस्था डिग्री तो उस डिगने की आस्था ने सारे माइंड को बदल दिया। उस माइंड में बदलाहट से नया सब कुछ पैदा हुआ।

इस मुल्क में भी, अगर हम माइंड को बदलने की फिकर नहीं करते हैं और पुरानी लकीरों को पीटते चले जाते हैं और चिल्लाए चले जा रहे हैं कि ठीक कह रहे हैं फलां, ठीक कह रहे हैं फलां, ठीक है, सब बिलकुल ठीक है, तो आप पक्का मानिए इस मुल्क के जीवन में कोई क्रांति, कोई परिवर्तन कोई नया आंदोलन नहीं हो सकता है। हमें माइंड पर चोट करनी पड़े। तो मैं जो फिकर करता हूं...मुझे उसकी फिकर नहीं है कि सामाजिक क्रांति हो या न हो। मुझे फिकर यह है कि मन में बीज में पड़ जाए तो आने वाले बच्चे क्रांति कर लेंगे, आपको इसकी फिकर करने की जरूरत नहीं। लेकिन बीच में हमारे दिमाग में खयाल ही नहीं है। अभी हमारे दिमाग में यह खयाल नहीं है इस मुल्क के कि शोषण पाप है। यह खयाल नहीं है हमारे दिमाग में। अभी भी खयाल नहीं है कि शोषण पाप है हम कहें उसे, जैसे हम चोरी को काफी पाप कहते हैं। ऐसे हम संपदा को भी चोरी कहें और पाप कहें वह हमारे मन मग नहीं है।

मार्क्स के भी पहले प्रूधो ने कहा कि संपत्ति चोरी है। उस एक सूत्र पर सारा का सारा समाजवाद विकसित हुआ। संपत्ति मात्र चोरी है। वेल्थ इज थेफ्ट। यह एक छोटा-सा सूत्र प्रूधो ने कहा। इस एक सूत्र पर पूरा कम्यूनिज्म विकसित हुआ। यह छोटा-सा सीड था। उसने यह कहा कि संपत्ति मात्र चोरी है क्योंकि बिना चोरी के संपत्ति इकट्ठा हो ही नहीं सकती। इस एक छोटे से सूत्र पर सारा का सारा कम्युनिज्म खड़ा हो गया। रूस और चीज एक छोटे से सूत्र पर खड़े हुए और आने वाले तीस चालीस वर्षों से सारी दुनिया में फर्क आ जाएगा और सबके पीछे प्रूधो का एक छोटा-सा वचन है। और प्रूधो बिलकुल साधारण सा आदमी था। यह कभी पता नहीं चलता दुनिया में कि प्रूधो नाम का एक आदमी था, वह एक वचन बोल गया कि यह जो संपत्ति है, चोरी है। एक दफा यह खयाल आ जाए कि संपत्ति चोरी है तो फिर समाज हमें ऐसा बनाना पड़ेगा जिसमें चोरी जैसी बुनियादी चीज न चलती रहे। बड़े चोरों और छोटे चोरों का फर्क है। बड़े चोर संपत्तिशाली हैं, छोटे चोर जेलों में हैं, सजा काटते हैं। छोटा चोर फंस जाता है, बड़ा चोर मालिक है। और बड़ा चारे पुण्यात्मा है और छोटा चोर पापी है।

तो जब तक हमारे दिमाग में यह खयाल चलता रहेगा तब तक यह व्यवस्था नहीं बदलती है। तो मेरा आग्रह इतना ही है कि किसी भी भांति यह मन की जड़ता हिल जाए; इसके तंतु यहां-वहां उखड़ जाए और एक बार हम फिर सोचने की विचार करने लगें कि सोचें कि हम

फिर से कि सच, असलियत क्या है तो शायद कोई बीज निर्मित हो जाए। और कोई बात नहीं है।

प्रश्न--स्पष्ट

उत्तर--मेरे मन में खयाल है कि सारे मुल्क की मानसिक रचना की आमूल बदला जाए। तो उसके लिए जगह-जगह केंद्र खड़े किए जाए, युवक संगठन खड़े किए जाए और मुल्क की जो जड़ता है, चिंतन के मामले में कि रुक गया है, डार्मेन्ट हो गया है कहीं, उसका बहाव नहीं रहा। वह बहाव खोल दिया जाए पूरी तरह से। सारा भय छोड़कर विचार की मुक्त धारा बहा दी जाए--जो भी परिणाम हों। तो उसके लिए तो प्रेस बहुत सहयोगी हो सकता है। क्योंकि आज तो सब तक बात पहुंचाने में प्रेस के अतिरिक्त और क्या सहयोगी हो सकता है? तो यह जो दृष्टि है वह लोगों तक पहुंचा दी जा सके, लोगों को आमंत्रित किया जा सके प्रेस के द्वारा कि वे इस डिस्क्स कर सकें...मेरी बात सही है यह मान लेने की कोई जरूरत नहीं। मेरा काम इतना काफी हो जाता है कि एक प्रालब्ध भी उठा लूं तो बात हो जाएगी। मैं एक प्रश्न उठाऊं तो उस पर आप निमंत्रण भेज सकते हैं कि लोग डिस्क्स करें। आप फौरन खड़ा कर सकते हैं, परिचर्चा चला सकते हैं अखबारों में, पक्ष-विपक्ष में लोग सोचें।

अभी जैसे बंबई में सेक्स पर मैं बोला हूं तो उसका पूरा सारभूत आप दे सकते हैं अखबारों में आप निमंत्रण दे सकते हैं कि लोग उनके पक्ष-विपक्ष में पत्र लिखें, डिस्क्स करें। मैं हमेशा तैयार हूं कि आखिर में जबाब देने को तो उनका जवाब दूं।

प्रश्न--अस्पष्ट

उत्तर--ठीक कहते हैं, एकदम ठीक-ठीक कहते हैं। चौदह साल की उम्र तक कपड़ों में ढांकना बच्चों के साथ बहुत बड़ा अपराध है। तेरह-चौदह साल तक जब तक सेक्स मेच्योरिटी नहीं आती, बच्चों को जितना नंगा रखा जा सके है। उतना हितकर है। उतना ही बाद में उनके जीवन में शरीर के प्रति जो एक पागल आकर्षण पैदा होता है वह नहीं पैदा होगा। नंगी तस्वीरों को देखने का जो मोह पैदा होता है वह नहीं पैदा होगा। सारा अश्लील साहित्य मर जाए जिस दिन हम बच्चों को चौदह साल तक नंगा रख लें उसके बाद अश्लील साहित्य बिक नहीं सकते। कोई खरीदने को नहीं मिलेगा।

प्रश्न--अश्लील साहित्य क्या पहले नहीं था।

उत्तर--अश्लील साहित्य नहीं था, उनके पास वेश्याएं थीं। मेरा मतलब यह है कि उस समाज के पास जिस समाज की आप...आज भी लोग उसे समाज के जिंदा हैं जंगलों में आज भी उस समाज के आदमी के मन में अश्लीलता नहीं है, सेक्सुअलिटी नहीं है, सेक्स है, सेक्सुअलिटी नहीं है। पर्वर्शन नहीं है और एक आदिवासी स्त्री का स्तन आप छूकर पूछ सकते हैं कि यह क्या है तो वह कहेगी, दूध पिलाती हूं इससे बच्चे को। बात खत्म हो गयी। इससे ज्यादा कोई सवाल नहीं है, बात खत्म हो गयी। लेकिन अभी सभ्य स्त्री की स्तन की तरफ आप देखें तो बेचैनी शुरू हो गयी। वह भी बेचैन है कि आप देख न लें और आप भी बेचैन हैं कि आप देख लें और वह छिपा भी रही है आपसे। वह छिपा भी रही है कि इसे छिपा ले।

और इस तरह के कपड़े भी पहन रही है कि वह दिखायी पड़े यह पर्वर्शन है। वह एक आदिवासी स्त्री का पर्वर्टेड माइंड नहीं है।

प्रश्न--चौदह साल के बच्चों की नग्नता...।

उत्तर--आपकी जो नग्नता के प्रति धारणा है वह गयी। आपके घर में अपने बाथरूम में सारे लोग घर का सारा परिवार नंगा होकर नहा सकता है और किसी को भी खयाल भी नहीं न आए। नदी के घाट पर आप नंगे स्नान कर सकते हैं, किसी को खयाल भी न आए। और होना नहीं चाहिए। समाज इतना सभ्य इतना सुसंस्कृत तभी माना जाएगा जब वह नग्न खड़े आदमी के प्रति भी साधारण भाव रखता हो। नहीं तो सुसंस्कृत नहीं है वह आदमी, अनकल्चरड है, वह आदमी असंस्कृत हैं। यह तो चौदह साल एक दफा हो जाए तो बड़े बूढे के लिए प्रालब्ध नहीं रहा। कपड़े आप पहनेंगे शौक से, जब जरूरत हैं। नहीं तो कोई जरूरत नहीं है। अगर नहीं जरूरत हो, तो आप नंगे बैठने का अपना आनंद है, अपना सुख है, अपना अर्थ है। किसी को नंगा बैठना चाहिए, यह मैं नहीं कहता लेकिन नंगा बैठने में कोई खतरा नहीं है। वह स्थिति तो मन की बननी चाहिए। और वह बच्चों को अगर नंगा रख सके तो वह स्थिति क्योंकि बच्चे कल बड़े होंगे। जो बच्चा चौदह साल तक नंगा घूम सका वह बच्चा चालीस साल का होकर बगीचे में नंगा बैठकर काम कर सकता है। उसको कोई परेशानी नहीं होने वाली है। परेशानी तो इसलिए हो रही है कि चौदह साल का, चार साल का तभी, नंगे मत हो जाना, जल्दी कपड़ा पहनो। मुसीबत तो उसको एक ऐसा फियर काम्पलैक्स पैदा कर दिया कि कपड़े नहीं पहनना, मतलब कोई ऐसा भारी अपराध है कि तुम गड़गड़ न करो।

नग्नता का अपना सुख है, अपना आनंद है, अपना स्वास्थ्य है। और सच तो यह है कि जब तक हम मनुष्यता को फिर से नग्न रहने की थोड़ी व्यवस्था नहीं करते तब तक मनुष्यता का पूरा स्वास्थ्य वापस नहीं लौटेगा। पूरा स्वास्थ्य कभी वापस नहीं लौट सकता। कपड़े पहन लेता है आदमी तो वह भूल ही जाता है शरीर की फिकर। कपड़े उसको काफी ऐसा दिखने लगते हैं कि ठीक था। अभी आज हम सारे लोग को नंगा खड़ा करें तो आपको पहली दफा अपने शरीर का खयाल आएगा कि यह क्या बात है, यह कैसा शरीर है! यह शरीर बर्दाश्त करने जैसा नहीं होगा, अगर आप नंगे खड़े हों।

प्रश्न--चंद्रकांत भाई का जवाब देंगे क्या?

उत्तर--हां, तो अभी एक ही मेरे मन में खयाल है कि सारे मुल्क के कोने-कोने से एक वैचारिक क्रांति, फिर एक युवक संगठन खड़ा करने का है, बिलकुल एक सैन्य ढंग पर युवक संगठन पूरे मुल्क में।

प्रश्न--क्या आपको पोलोटिक्स से भाग लेने का है?

उत्तर--न, पोलोटिक्स में भाग लेने का नहीं हूं, लेकिन मुल्क की जिंदगी में भाग लेने का है। उसमें पोलोटिक्स भी है। पोलोटिक्स में भाग लेने का नहीं है। लेकिन मुल्क की पूरी जिंदगी में भाग लेने का मन है। उसमें धर्म भी है, उसमें पोलोटिक्स भी है, उसमें एजुकेशन

भी है, उसमें एकोनामिक्स भी है। पालिटिक्स में मेरी रुचि नहीं है, लेकिन मुल्क की पूरी जिंदगी मेरी रुचि है और उसकी जिंदगी में पालिटिक्स भी है। तो मुल्क की जिंदगी को जहां-जहां पालिटिक्स छूती है, वहां कोई उससे भागकर और डरने वाला मेरा मन नहीं है कि उससे कोई भागता है। जो उसमें भी जरूरी लगे, उसके फर्क के लिए हमें फिकर करनी है। उसकी जरूर फिकर करनी है। तो एक यूथ फोर्स खड़े करने का है पूरे मुल्क में--युवक का, युवतियों का। वह एक सामाजिक क्रांति के लिए एक भूमिका बनाने के लिए कि दस साल में अगर कोई सामाजिक क्रांति खड़ी करनी हो तो हमारे पास एक शक्ति भी होनी चाहिए, जो पीछे बल दे सके। जो कह सके कि हां इस क्रांति को हम ताकत देते हैं।

तो एक तो यूथ फोर्स के लिए जोर से विचार है। दूसरा, एक गांव-गांव, बड़े-बड़े नगरों में फिलहाल छोटे-छोटे आश्रम खड़े करने का मेरा खयाल है। जहां जिसको मैं ध्यान कह रहा हूं, उस ध्यान के सतत प्रयोग चल सकें। कुछ संन्यासियों का एक नया आर्डर खड़ा करने का खयाल है, ऐसे संन्यासी का जो किसी धर्म का नहीं होगा। जिसका किसी किताब के प्रति कोई आग्रह नहीं होगा और जो न हिंदू होगा, न मुसलमान होगा, न जैन होगा। वह सिर्फ संन्यासी होगा। और धर्म क्या है, उसकी खबर वह ले जाएगा। और मेरी दृष्टि में, धर्म का अर्थ जो सारे जीवन को छू ले। उसमें शिक्षा भी है, राजनीति भी है। उसमें दांपत्य भी है, उसमें सेक्स भी है। धर्म का मेरा मतलब यह है कि वह फिलासफी पूरे लाइफ की, पूरे जीवन को छू ले। तो एक संन्यासी का आर्डर जल्दी खड़ा करने का है कि पांच सौ संन्यासी पूरे मुल्क में गांव-गांव भेजे जा सके जो जाकर वहां खबर ले जाए और एक हवा पैदा करें और दस साल में एक मूवमेंट खड़ा किया जाए कि हम समाज की जिंदगी में जो भी फर्क लाना चाहते हों उनके लिए ताकत दी जा सके कि वह फर्क पैदा हो सके।

प्रश्न--यह सब चलाने के लिए जो पैसा जाओगे सार्वजनों से...।

उत्तर--बिलकुल भी नहीं होगा। यह तो मेरे विचार जिस पसंद है वह तो उनके लिए सहायता पहुंचा रहा है। न इससे स्वर्ग का आश्वासन है उसको, न पुण्य का आश्वासन है उसको। ज्यादा से ज्यादा इतना है कि उसने जो गलत किया है उसका पश्चात्ताप है। इससे ज्यादा नहीं है इसमें कोई अर्थ।

प्रश्न--अस्पष्ट

उत्तर--इसकी बहुत फिकर नहीं है। मेरी फिकर यह है...एक तो कंट्रोवर्सियल वे हैं नहीं, जो भी मैं कह रहा हूं। वे दिखायी पड़ सकती है क्योंकि जिंदगी कंट्रोवर्सियल है। जिंदगी इतनी पैरोडाक्सियल है, उसके इतने पहलू हैं कि जब एक पहलू से हम कुछ बातें करें और दूसरे पहलू से बात करें, तो अक्सर हम दोनों में मेल नहीं बिठा पाते। लेकिन मैं कोई कंट्रोवर्सियल बात नहीं कर रहा हूं। जब भी मुझ से पूछा जाए तो मैं तैयार हूं। तो वह कंट्रोवर्सियल नहीं है। जैसा अभी आपने पूछा कि दान का मैंने यह कहा और दान का मैंने यह कहा। मेरे लिए कंट्रोवर्सी नहीं है बात। लेकिन मेरी बात सुनकर यह खयाल पैदा हो सकता है। पर मैं सोचता

हूं। कि अगर खयाल भी पैदा हो जाए तो अच्छा है क्योंकि फिर आप पूछते हैं, विचार चलते हैं। वह तो निपट जाएगा, वह तो हल हो जाएगा।
और यह भी मैं फिकर नहीं करता कि जो मैं कहूं वह अगर लोगों की मान्यता के विपरीत पड़ता है तो वे मुझसे दूर चले जाएंगे। अगर मैं, जो कह रहा हूं वह ठीक है तो वे आज दूर जाएंगे, पास आ जाएंगे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता लेकिन उनको देखकर मैं कुछ नहीं कह सकता हूं कि वे पास आए, क्योंकि वह बेईमानी है। अगर कोई बात करूं सिर्फ इसको खयाल रखकर कि आप मेरे पास आ जाए तो फिर वह बेईमानी है। और फिर...फिर यह असत्य का धंधा होगा पूरा का पूरा क्योंकि आप किसके पास आएंगे वह अगर चिंतन है, तो फिर बड़ी कठिनाई की बात है। तो मैं तो मुझे जो ठीक लगता है वह कहे चला जाऊंगा। कौन पास आता है, कौन दूर जाता है वह भगवान पर छोड़ दूंगा समझ मेरी इतनी है कि अगर किसी बात में कोई भी सचाई है तो लोग उसके पास आज नहीं कल आ जाते हैं। अगर सचाई नहीं है तो आना भी नहीं चाहिए। वह बात अपने आप मर जाएगी। या तो मेरी बात मर जाएगी तो मर जाना चाहिए अगर वह सच नहीं है। और अगर सच है तो मैं मानता हूं कि इतना मुल्क नहीं मर गया है कि लोग सच के करीब नहीं आ पाएंगे। इतना नहीं मर गया है कोई वह तो करीब आ जाएंगे। दोनों हालतों मग कोई फर्क नहीं पड़ता।
आई बड़ौदा, दिनांक ८ सितंबर, १९६८

नाचो समग्रता है नाच

धर्म हमारा सर्वग्राही नहीं है। वह जवान को आकर्षित ही नहीं करता है। जब आदमी मौत के करीब पहुंचने लगे तभी हमारा धर्म उसको आकर्षित करता है।इसका मतलब यही है कि धर्म हमारा मृत्योन्मुखी है। मृत्यु के पार का विचार करता है, जीवन का विचार नहीं करता है। तो जो लोग मृत्यु के पार जाने की तैयारी करने लगे वे उत्सुक हो जाते हैं। ठीक है उनको उत्सुक हो जाना। उसके लिए भी धर्म होना चाहिए। धर्म में मृत्यु के बाद का जीवन भी सम्मिलित है लेकिन इस पार का जीवन भी सम्मिलित है और उसकी कोई दृष्टि नहीं है।

और ऐसे ही मैं मान नहीं सकता कि बच्चों के लिए वही धर्म काम का हो सकता है जो बूढ़ों और वृद्धों के लिए है। बच्चों का तो जो धर्म होगा वह इतना गंभीर नहीं हो सकता है। वह तो खेलता, कूदता, हंसता हुआ होता है। बच्चों का ऐसा धर्म चाहिए जो उनको खेलने के साथ धर्म आ जाए, वह उनकी प्लेफुलनेस का हिस्सा हो। वह मंदिर में जाते हैं और बच्चे, वह तो वहां भी शोर-गुल करना चाहते हैं। हम उनको डांटकर चुप बैठा देते हैं। और उसका परिणाम यह होता है कि बच्चों को यह समझ में ही नहीं आता है कि क्यों कर दबाया जा

रहा है, क्योंकि चुप किया जा रहा है, और बचपन से ही मंदिर कोई अच्छी जगह नहीं है, यह भाव पैदा होता है बच्चों मन में। वहां कोई खेलना है, कूदना है, आनंदित होना है--वह नहीं है वहां।

फिर जवान आदमी को भी धर्म कुछ ऐसा मालूम पड़ता है वह जीवन-विरोधी है। न वहां प्रेम की आज्ञा देता है, न वहां काम की तृप्ति के लिए कोई विचार और दृष्टि देता है। न वह शरीर के सौंदर्य और शरीर के रस के लिए संभावना देता है। और जवान के पूरे प्राणों में भी जो पुकार है वह सौंदर्य की है प्रेम की है, धर्म उसकी पुकार को किसी तरह कोई उत्तर नहीं देता, कोई रिस्पोंस नहीं देता। तो वह सिनेमा जाता है, वह वहां जाता है जहां उसको उत्तर मिल सकता है। और वह सब गलत उत्तर है। जहां उसको उत्तर मिल सकता है। और वह सब गलत उत्तर है। मरो कहना है, मंदिर से उत्तर मिलना चाहिए। मगर वह हम मंदिर न बना सके जो सारे जीवन को घेरता हो, न वह हम धर्म खड़ा कर सके।

तो इधर तो मेरी पूरी चिंतन बस बात पर लगी हुई है कि हम जीवन के पहले दिन से लेकर अंतिम विदा के क्षण तक समग्र जीवन को उसके आमूल, इकट्ठे रूप में सोचें और सारी चीजें जो जीवन में हैं वे धर्म के संबंध में हों। तो मुझे दिखायी पड़ रहा है कि एक तरह की धार्मिक चिंतना सारे जगत में और सारे मनुष्य के लिए उपयोग हो सके। उसमें सेक्स के लिए बहुत अनिवार्य जगह बनानी पड़ेगी। अभी तो कोई जगह ही नहीं है।

प्रश्न--अस्पष्ट

उत्तर--कोई सवाल ही नहीं है। यानी मेरा कहना यह है कि विवाह जो है ऐसा नहीं होना चाहिए कि हिंदू का धर्म, मुसलमान का धर्म, ऐसा होरिजेंटल रही, वर्टिकल होना चाहिए--बच्चे का धर्म, जवान का धर्म, बूढ़े का धर्म। वह जो विभाजन होगा वह ऐसा होना चाहिए--नीचे से ऊपर की तरफ। उस विभाजन में तो कोई वैज्ञानिक का मतलब होता है।
हिटलर जैसे हुकूमत में आया तो उसने क्या किया आते से ही? उसने कहा, अब बच्चों को हम खेल-खिलौने, गुड्डा-गुड्डी यह नहीं बनाने देंगे। तोपें बनानी चाहिए, बंदूकें बनानी चाहिए खिलौने की जगह। और बच्चे की पहले दिन भी उसके झूले पर लटकानी हो तो तोप लटकानी है। क्योंकि हमें सैनिक बनाना है, तो उसकी आत्मा को साक्षात्कार करनी होगी, वह उसके खेल का हिस्सा हो जाएगा। पहले वह तोप से खेले, कल वह फिर तोप चलाना खेल समझेगा। उसमें कोई बाधा नहीं रह जाएगी। आज खेलेगा तोप से, कल तोप चलाने को खेल समझ पाएगा। वह उसकी जिंदगी का हिस्सा हो जाएगी। उसे कभी कल्पना भी नहीं उठेगी।
प्रश्न--जैसे अभिमन्यु?

उत्तर--हां, पहले से जो भी हमें बनाना है जीवन को। अगर हमें जीवन को एक धार्मिक जीवन बनाना है तो बच्चे के पहले दिन से उसकी शुरुआत हो जानी चाहिए। और यह असंभव है कि बच्चे अधार्मिक हों, जवान अधार्मिक हों बूढ़े अचानक धार्मिक हो जाए यह संभव है। क्योंकि बूढ़ा होना तो उसकी फलावरिंग है, उसी से निकलेगा। तो अगर बच्चे धार्मिक नहीं हैं, जवान धार्मिक नहीं हैं तो बूढ़े झूठे धार्मिक होंगे, मेरा कहना है। वे कभी सच्चे धार्मिक नहीं होंगे। सारे जीवन का आधार अधार्मिक होगा। और फिर अचानक एक दिन मौत को सामने देखकर वे घबरा जाएंगे और प्रार्थना करने लगेंगे। उस प्रार्थना का कोई बहुत मूल्य नहीं है।

प्रश्न--आप बच्चों के लिए कैसा धर्म चाहते हैं?

उत्तर--हिंदू का नहीं--हिंदू-मुसलमान को तो मैं पागलपन समझता हूं। धर्म यानी धर्म। जैसे विज्ञान, गणित यानी गणित, कोई गणित पूरब का अलग, पश्चिम का अलग, हिंदू का अलग, मुसलमान का अलग, ये पागलपन की बातें हैं। गणित अगर सही है तो एक होगा, गलत है तो कई तरफ का हो सकता है। वैसे ही धर्म यानी धर्म। आत्मा के, परमात्मा के पाप के जो भी नियम हैं, जो सार्वलौकिक नियम हैं उनको मैं धर्म का नाम देता हूं।

बच्चे के धर्म से मेरा मतलब है कि बच्चे का जो रुझान है--जैसे बच्चा खेलना चाहता है, कूदना चाहता है। मेरा कहना है, खेलने और कूदने के साथ ध्यान को जोड़ा जा सकता है--मेडीटेशन इन एक्शन। बच्चा कवायद कर रहा है।

प्रश्न--हमारे आश्रम में तो विभाजन था!

उत्तर--काहे में है? हमारे जो आश्रम का विभाजन था, चार विभाजन में हमने आदमी को तोड़ दिया हुआ था। जो पहले पच्चीस वर्ष के थे उसको हम ब्रह्मचर्य की शिक्षा देते थे और मेरा कहना है कि पहले पच्चीस वर्ष काम की शिक्षा दी जानी चाहिए; सेक्स की, ब्रह्मचर्य की नहीं बेहूदी बात है। सेक्स की परिपूर्ण शिक्षा से ब्रह्मचर्य निकल सकता है। और ब्रह्मचर्य की शिक्षा से सिर्फ सेक्स का सप्रेशन होता है, और कुछ नहीं होता है। और सप्रेस्ड व्यक्ति खतरनाक व्यक्ति है और हजार रोगों का आमंत्रण है उसमें। मेरे में जो फर्क हैं, मैं पच्चीस वर्ष को मानता हूं जैसे ही व्यक्ति सेक्सुअलाजी मेच्योर हुआ--लड़का या लड़की, उसको पूरे काम-काज करके सेक्सुअली की पूरी शिक्षा देनी चाहिए और वे सारी सत्य बातें कह देनी चाहिए जो कि सत्य हैं, लेकिन झूठी शिक्षाएं उनको गलत बातें सीखा रही हैं। सारी दुनिया के अनुभव, वैज्ञानिक शिक्षण यह परिणाम होते निकाली। जैसे ही बच्चे दस-बारह साल को पार किया, उसके जीवन में सेक्स की नयी घटना उठ रही है। उस घटना के बाबत सत्य--नैतिक आधार पर नहीं, वैज्ञानिक आधार पर, हम क्या चाहते हैं उस हिसाब पर नहीं, मनुष्य कैसा है उस हिसाब पर पूरी शिक्षा और मनुष्य के सहज स्थिति की स्वीकृति।

पुराने धर्म में उसकी स्वीकृति नहीं थी। चीजों की स्वीकृति नहीं थी जो हमारे भीतर हैं। उसकी निंदा है, उसका विरोध है, उनको तोड़ डालना है बदल डालना है। इसीलिए तो हमने पाखंडी समाज पैदा कर लिया। क्योंकि जो वास्तविक है उसकी स्वीकृति नहीं है। तो आदमी वास्तविक को भीतर दबा लेता है और जो वास्तविक है ही उसकी खोल ओढ़ लेता है ऊपर से क्योंकि आप कहते हैं कि ऐसा होना चाहिए। अगर संन्यासियों के पास घूम फिर कर अध्ययन करें--और वैज्ञानिक अध्ययन कभी कुछ होता नहीं। आमतौर से जिन संन्यासियों को स्त्री का साथ नहीं मिला, उनमें होमोसेक्सुअलिटी पैदा हो जाने वाली है, मैं कह रहा हूं, ब्रह्मचर्य की शिक्षा का सवाल नहीं है, सवाल है काम की और सेक्स की शिक्षा का। आपके उस आश्रम में जिसको आप ब्रह्मचर्य आश्रम कहते थे, सेक्स की कोई शिक्षा कभी नहीं दी गयी थी, सिवाय सेक्स की निंदा के और विरोध के; इससे ज्यादा कोई शिक्षा कभी नहीं दी गई थी। न आपका कोई शास्त्र बताता है कि क्या शिक्षा आप देते थे।
उसे हमने ब्रह्मचर्य का नाक दिया था, वह इसलिए ही दिया था।

प्रश्न--शिक्षा के लिए?

उत्तर--शिक्षा के लिए नहीं, गृहस्थ की तैयारी के लिए क्योंकि दूसरा आश्रम गृहस्थ का है। वह ब्रह्मचर्य छोड़ेगा आखिर थोड़ी ही छोड़ देगा, फिर विद्या थोड़े ही छोड़ देगा! वह पहले आश्रम से दूसरे आश्रम का फर्क क्या है? दूसरे आश्रम का फर्क यह है कि वह ब्रह्मचर्य छोड़ेगा और कामुक जीवन में सम्मिलित होगा, जबकि लाइफ शुरू होगी उसकी। तीसरे जीवने में वह सेक्सुअल लाइफ छोड़ेगा और वन की तरफ उन्मुख और चौथे जीवन में वह वन में प्रविष्ट हो जाएगा। व्यवस्था जो थी वह यह थी कि पहले मैं वह तैयारी करेगा काम निमंत्रण की। दूसरे में काम का भोग कहेगा। तीसरे में काम भोग से जो बच्चा पैदा हुए हैं उनकी व्यवस्था जुटाएगा और चौथे में मोक्ष की यात्रा पर उन्मुख हो जाएगा। वह पूरी की पूरी व्यवस्था सेक्स से संबंधित है।
ब्रह्मचर्य का मतलब? ब्रह्मचर्य के काल में वह विद्याध्ययन करेगा। विद्याध्ययन ब्रह्मचर्य के काल का हिस्सा होगा, लेकिन साधना ब्रह्मचर्य की रहेगी। विद्या-अध्ययन भी जो है, वह भी विद्यार्थियों में आप क्या कराते रहे थे? विद्या-अध्ययन के नाम पर आप कराते क्या थे उसको? अगर उसको भी बहुत गौर से देखेंगे तो बहुत हैरानी होगी कि विद्या अध्ययन के नाम पर आप कराते क्या थे? विद्या अध्ययन के नाम पर धर्म के नाम पर रिचुअल सिखाते थे कि यज्ञ ऐसे करना, हवन ऐसे करना, पूजा ऐसी करनी यह सब सिखाते थे। धर्म तो कुछ सिखाया नहीं जाता था, रिचुअल सिखाया जाता था, कर्म-कांड सिखाया जाता था विद्या के नाम पर।
दूसरी मजे की बात है कि जितना भी जो लोग वहां गुरुकुल में सम्मिलित होते थे, वह कोई पूरे समाज को छूने वाली व्यवस्था न थी शूद्र तो सम्मिलित हो नहीं सकता था, शूद्र तो

वर्जित था। चंडाल वर्जित था। सम्मिलित होते थे ब्राह्मणों के लड़के और राजाओं के लड़के। तो ब्राह्मणों पौरोहित्य का काम सिखाते थे शिक्षा के नाम पर कि वे पुरोहित कम बनें और राजा के लड़कों को युद्ध का काम सिखाते थे, सैनिक का काम सिखाते थे। कुल जमा सारी शिक्षा यही थी। अन्यथा अगर हमारे पास शिक्षा का कोई व्यक्तित्व शास्त्र होता तो पांच हजार साल में पश्चिम हमारे आगे निकल जाता--तीन सौ वर्षों में? अगर कोई विद्या का व्यवस्थित आयोजना की होती...तो हम पांच हजार साल से चिंतन कर रहे थे इस दिशा में, और हम कुल जमा यह समाज पैदा कर पाए जो हमारे पास है! आज हमारे पास सब कुछ उधार है। न तो एक मशीन है आपकी अपनी बनाई हुई, न आपके आप अपनी बनायी हुई एक दवा है, न आपके पास बुनाई हुई आलपीन है, और न हवाई जहाज है। आप पांच हजार वर्ष से विद्या का अध्ययन कर रहे थे, ब्रह्मचारीगण इकट्ठे होकर--यहां तक आपका विज्ञान विकसित हुआ, यहां तक आपकी समझ विकसित हुई! क्या विकसित हुआ?

तो विद्या के नाम पर पौराहित्य सिखाया जा रहा था। पौरोहित्य से विज्ञान नहीं निकलता। विद्या के नाम पर रिचुअल सिखाया जाता था, रिचुअल से कोई धर्म नहीं निकलता है। विद्या के नाम पर समाज का एक ढांचा था, उस ढांचे को कैसे कायम रखा जाए, इसका आयोजन किया जा रहा था, उस ढांचे को कैसे कायम रख जाए, इसका आयोजन किया जा रहा था। वह जो स्ट्रक्चर था वह टूट न जाए, उसकी पूरी आयोजना की जाती थी। क्षत्रिय का काम यह था कि ब्राह्मण की रक्षा करे और ब्राह्मण का काम यह था कि वह क्षत्रिय को प्रोत्साहन दे और वह कहे कि यह भगवान है। जिसको आप कहते हैं कि हमने बड़ी ऊंची समाज व्यवस्था बना रखी थी, नाम बड़े प्यारे हैं लेकिन उस समाज व्यवस्था के भीतर असलियत क्या थी, नाम बड़े प्यारे हैं लेकिन उस समाज व्यवस्था के भीतर असलियत क्या थी और सत्य क्या था? सत्य यह था कि राम जैसे अच्छे आदमी को भी शूद्र के कानों में शीशा पिघलवाकर डलवाने की हमने व्यवस्था की है, क्योंकि वह वेद सुन रहा था कान से। वेद नहीं सुन सकता है शूद्र। ऐसे हम विद्या गुणी थे कि शूद्र के कान में हमने शीशा पीघलवाकर डलवा दिया। और मजा यह है कि आज इस पूरे वेद को तुम पढ़ने को किसको कहो, तो पढ़ कर वह पाता है कि कुछ भी नहीं है। दस पंक्तियों को छोड़ कर सारा वेद व्यर्थ है। यानी कई दफे इतनी हैरानी होती है कि जिस वेद को तुम इतना सुरक्षित करते रहे थे, उसमें दस पच्चीस इम्पार्टेन्ट पंक्तियां हैं, बाकी सब कबाड़ और कचरा है जिसमें कि कल्पना भी नहीं हो सकती कि इसमें धर्म का भी कोई संबंध हैं। एक दूध को दोहने वाला भगवान से प्रार्थना कर रहा है कि गाय के थन में ज्यादा दूध आ जाए--यह भी वेद में है। एक किसान कह रहा है कि हे भगवान वर्षा हो जाए, इंद्र भगवान वर्षा हो जाए मेरे खेत में--यह भी वेद है। एक आदमी कह रहा है, मेरे शत्रु सब मर जाए--यह भी वेद में है। यह सब धर्म शास्त्र है। इसका अध्ययन कर रहे थे ब्रह्मचारी गण बैठकर वर्षों तक!

विद्या के नाम पर क्या था? और गृहस्थ आश्रम के नाम पर आपने कौन सी साइंस विकसित की थी? यह विकसित किया आपने कि स्त्रियों को सती करवाया। यह विकसित किया कि पुरुषों को परमात्मा बनवा दिया और औरत को दासी बनवा रखा है इतने दिन तक। यह विकसित किया कि स्त्री की सारी शिक्षा छीन ली, सारी स्वतंत्रता छीन ली, सारा सामर्थ्य छीन लिया।

प्रश्न--मनु जी ने?

उत्तर--हां, वही तो गुरु, हमारे व्यवस्थापक थे। मनु हमारा एजुकेट है। हमारे एजुकेट दोनों थे, एक मनु और एक मैकाले। दो के अलावा इस मुल्क में कोई एजुकेट हुआ नहीं। एक मनु था, वह हमें बेवकूफ बना गया, दूसरा मैकाले हमें बना गया। और दो हमारे एजूकेट हैं और दोनों के मिल कर सारे मुल्क के दिमाग को खराब कर रखा है।

प्रश्न--लेकिन बुद्ध ने भी तो पैंतालीस साल तक दिया?

उत्तर--जरूर, बुद्ध ने हिम्मत की तो बुद्ध टिक नहीं सके? आप समझिये न! बुद्ध ने हिम्मत की, सो बुद्ध कहां है। बुद्ध हिंदुस्तान में टिक न सके, पैर उखड़ गए यहां से।

प्रश्न--बुद्ध ने क्या किया?

उत्तर--बड़ी हिम्मत की। हिंदुस्तान में कोई क्रांतिकारी नहीं हुआ, ऐसा नई...लेकिन हिंदुस्तान की धारा ऐसी रही कि क्रांतिकारी के पैर यहां टिक नहीं सके। आज भी नहीं टिकते। आज भी पूरी धार उखाड़ने की कोशिश करती है कि पैर टिक जाए कहीं। आज भी हम कोई क्रांति उन्मुख समाज नहीं हैं, रिव्योलूशनरी समाज नहीं है हमारा और मेरा कहना है, जो समाज क्रांति उन्मुख नहीं है वह समाज मुर्दा है और मर चुका है क्योंकि क्रांति तो चाहिए रोज, हर पहलू पर।

प्रश्न--अस्पष्ट

उत्तर--एक तो इस देश में कभी भी शरीर की बहुत चिंता नहीं की गयी है और इसीलिए शरीर की दृष्टि से हम बहुत हीन और दीन हो गए हैं। तो बचपन मग सबसे ज्यादा जोर तो शरीर स्वास्थ्य पर दिया गया है, सबसे ज्यादा जोर। कुछ भी मूल्यवान नहीं है उससे ज्यादा। यानी सब कुछ छोड़ा जा सकता है, लेकिन उसको नहीं छोड़ा जा सकता है। चाहे सारी शिक्षा छूट जाए तो कोई हर्जा नहीं। बहुत कीमती है, तो उसके शरीर को इतना मजबूत और बलवान बना दें। तो आने वाले पूरे जीवन में उसके शरीर के बाबत उसको विचार भी न करना पड़े कि वह है भी। स्वस्थ आदमी का एक ही लक्षण है कि उसको शरीर का पता भी न रहे। और बीमार आदमी लक्षण है कि उसको पता चलता रहे...कि यह शरीर है, यह पैर है, यह सिर है। तो कुछ भी पता नहीं चलना चाहिए। इतनी एक तो शारीरिक व्यवस्था देनी चाहिए, लेकिन हिंदुस्तान का सारा चित शरीर विरोधी रहा है आज तक। सच तो यह है कि शरीर को जितना हम नुकसान पहुंचाएंगे उतना ही हम आध्यात्मिक समझे जाते रहे हैं।

काउंट कैसर लिंग ने एक डायरी लिखी है, हिंदुस्तान से लौट कर। और उसने लिखा है कि हिंदुस्तान जाकर समझ में आया कि टुबी हेल्दी इज टुबी अनस्प्रीचुअल। हिंदुस्तान जाकर यह

समझ में आया कि स्वस्थ एक गैर आध्यात्मिक बात है, अस्वस्थ होना एक आध्यात्मिक खूबी है। तो हिंदुस्तान की शिक्षा यह रही है, शरीर विरोधी। स्नान मत करो, संन्यासी कहते हैं। संन्यासियों के वर्ग है कि स्नान नहीं करते। और आप स्नान करते हैं इसलिए आपको पापी समझते हैं। पसीना आ जाए उनको पोंछो मत क्योंकि पसीने को पोंछना शरीर को सुंदर बनाने की चेष्टा है। और शरीर को सुंदर क्यों बनाएं? शरीर को सुंदर बना तो पाप है।

तो मेरा कहना है, शरीर स्वस्थ होना चाहिए, शरीर सुंदर होना चाहिए। ये वैल्यूज हमें कल्टीवेट करनी चाहिए, पांच हजार साल में यह वैल्यूज खत्म हो गयी। कोई आदमी शरीर के सौंदर्य चेष्टा करता है तो वह अपने भीतर गिल्टी अनुभव करता है कि वह कोई पाप कर रहा है। एक बच्चा अगर सुंदर दिखाई पड़ता है या वह सुंदर होने की चेष्टा करता है, स्वस्थ होने की, तो वह गिल्टी है। वह कोई अच्छा काम नहीं कर रहा है। फूहड़ कपड़े पहनें लड़के तो अच्छे मालूम होते हैं। वह ऐसे कपड़े पहनें जिनमें ताजे और स्वस्थ और सुंदर दिखाई पड़े तो हमारा समाज विरोध में है इस बात के लिए, कि यह गलत बात है। क्योंकि हमारी कारण यह है कि शरीर विरोधी है हमारा चिंतन पूरा; कि हम आत्मा को बात करना चाहते हैं शरीर के विरोध में।तो मेरा पहला कहना है कि शरीर का मूल्य वापस प्रतिस्थिति करना है। शरीर का मूल स्थापित करना है वापस।

शरीर को इस ट्रेनिंग के साथ ही उसी के साथ सैन्य शिक्षण हर बच्चे को मिलना चाहिए। क्योंकि जब तक हम बहुत छोटी उम्र से सैन्य शिक्षण न दें तब तक न तो हम साहस विकसित कर सकते हैं। और जिस बच्चे में साहस नहीं है वह बच्चा कभी भी नैतिक नहीं हो सकेगा। मैं नैतिक जीवन का बुनियादी आधार करेज मानता हूं--न तो सत्य मानता हूं और न अहिंसा मानता हूं, करेज जितना साहसी लड़का होगा, जीवन में उतना ही वह सत्यवादी होगा। क्योंकि जब भी साहस की कमी पड़ती है तभी आदमी झूठ बोलता है। जब उसको लगता है कि ठग जाएंगे सच बोलने से, तब झूठ बोलने लगता है। जब उसको लगता है कि ईमानदारी की तो नुकसान हो जाएगा तो वह बेइमानी करता है। मेरी दृष्टि में सारी अनीति साहस की कमी है।

और साह तभी विकसित होता है जब हम बच्चों को साहस की ट्रेनिंग से गुजारें। सैनिक शिक्षण का मतलब है कि उसे साहस की ट्रेनिंग से गुजारें। सैनिक शिक्षण का मतलब है कि उसे साहस की ट्रेनिंग से गुजारना चाहिए। छोटे से छोटे बच्चों को पहाड़ों पर ले जाना चाहिए, समुद्रों में तैरना चाहिए। दस पच्चीस हजार बच्चे हर साल मरेंगे, मर जाने देना है, इसकी फिकर छोड़ देनी है--पूरी कौम के मरने की बजाय। जिस तरह से कल्टीवेट हो सके साहस, दुस्साहस कल्टीवेट हो सके, वह हमें सारी चेष्टा का कर पाएंगे। नहीं तो यह जो शिक्षक हमें समझ रहे हैं और नेता समझा रहे हैं कि मारल टीचिंग हो स्कूल में, झूठ बोलना पाप है--यह तो हम पांच हजार साल से कर रहे हैं। इसमें कुछ-कुछ नहीं हुआ। कि हिंसा परमोधर्म है, यह सब तो बहुत हो चुकी है बकवास, इससे कुछ हुआ नहीं। हमें यह पकड़ना पड़ेगा कि एक आदमी अनैतिक होता कब है? जब भी उसमें साहस की कमी पड़ती

है और फियर पैदा होती है, तभी वह अनैतिक होता है। तभी बचाव के लिए एक ही रास्ता रह जाता है उसके पास कि वह झूठ बोल ले, बच जाए। बेईमानी कर ले, चोरी कर ले। हमें इतना साहसी बच्चा पैदा करना है जो कि जान हमेशा हथेली पर लिया रहे तो ही नैतिक आदमी पैदा होगा। क्योंकि पूरी सोसाइटी ही इममोरल है और मारल आदमी तभी पैदा हो सकता है जब पूरी सोसाइटी से लड़ने की हिम्मत उसके भीतर हो। हममें लड़ने की हिम्मत नहीं है। हमें लड़ने की हिम्मत पैदा करने की बड़ी जरूरत है। और वह कोई बच्चे में किससे लड़ने की हिम्मत हम पैदा कर सकते हैं, समुद्र से लड़ने की हिम्मत पैदा कर सकते हैं, पहाड़ पर जूझने की हिम्मत पैदा कर सकते हैं। उसे हम उस ट्रेनिंग से गुजार सकते हैं जहां उसे ऐसा लगने लगे कि वह जान हथेली पर लिए हुए है।

एक घटना मुझे याद आती है--अकबर के पास दो राजपूत लड़के गए। उम्र कोई बीस वर्ष है। दोनों जुड़वा भाई हैं और उन्होंने जाकर, अकबर से जाकर कहा कि हम दो बहादुर लड़के हैं, और नौकरी की तलाश में आए हैं। अकबर ने ऐसे ही मजाक में पूछा कि बहादुरी का कोई प्रमाण पत्र है? कैसे हम समझे कि तम बहादुर हो? उन दोनों की आंखों में एकदम आग चमक गयी। उन्होंने बहादुरी का प्रमाणपत्र कहीं सुना है? और कोई बहादुर आदमी किसी दूसरे से प्रमाणपत्र लिखाने जाएगा कि मैं बहादुर हूं? अगर कोई लिखता है तो उसको कायर समझ लेना और उन्होंने तलवार निकाली और वे तलवारें एक दूसरे के छाती में घुस गयी। दोनों भाई थे। फव्वारा छूट गया, खून का, नीचे गिर पड़े। अकबर तो घबड़ा गया। उसने अपने सेनापतियों को बुलाया राजपुतों को कि यह क्या हो गया? यह तो बड़ी मुश्किल हो गयी। मैंने तो सिर्फ प्रमाणपत्र पूछा था। उन सेनापतियों ने कहा, राजपुतों से प्रमाण पत्र पूछना होता है। प्रमाणपत्र एक ही है कि हम मरने को हमेशा तैयार हैं, उसके सिवा और क्या प्रमाण हो सकता है? बहादुर आदमी का प्रमाणपत्र क्या है--कि हम मरने को हमेशा तैयार है। जीने का कोई मोह नहीं ऐसा कि हम उसके लिए कुछ खोने को तैयार हों। सब खो सकते हैं--जीने को भी खो सकते हैं, दांव पर लगा सकते हैं।

तो छोटे बच्चों को, मेरी दृष्टि में, दूसरी ट्रेनिंग का हिस्सा है, जीवन को दांव पर लगाने की। वह तो मेरा कहना यह है कि यह तो बढ़ाते जाना चाहिए जब की युनिवर्सिटी के लेवल पर बच्चा बाहर न निकले। तो वह तो कर देना चाहिए जितनी जल्दी हो सके। के. जी. शुरू करना चाहिए। डेवलपमेंट होंगे उसके तो। के. जी. के बच्चे कोई समुद्र में नहीं फेंक देना है, लेकिन के. जी. के बच्चे को भी अंधेरे में भेजा जा सकता है, दरख्तों पर चढ़ाया जा सकता है, उसकी हिम्मत बढ़ायी जा सकती है, जहां उसको हमेशा यह लग सके कि मर सकता हूं, लेकिन मरना फिकर नहीं करनी है जो करना है। वह इतना जल्दी बीजारोपण करना है कि युनिवर्सिटी के लेवल तक आते-आते हम उसको उस हालत में खड़ा कर दें कि वह अपने को बहादुर कह सके, तो हम करेक्टर खड़ा करेंगे, क्योंकि सोसाइटी है इम्मारल।

प्रश्न--फिजिकली वीब बच्चे हों?

उत्तर--मैं समझा आपकी बात को--फिजिकली वीक भी बच्चे है। उसका कारण कुल इतना है कि बच्चे पैदा करने की हमारी सारी व्यवस्था अवैज्ञानिक है। सच तो यह है कि अगर थोड़ी भी वैज्ञानिक बुद्धि और समझ हो तो हर आदमी को बच्चा पैदा करने का हम नहीं होना चाहिए मेरी जो समाज की अपनी कल्पना है उसमें हर आदमी को बच्चा पैदा करने का हक नहीं देता--मेरी समाज की कल्पना में। बच्चा पैदा करने का हक बहुत बड़ी जिम्मेवारी है क्योंकि आप एक बच्चे को पैदा नहीं कर रहे हैं, आप बच्चे के द्वारा पूरी इस दुनिया को पैदा कर रहे हैं जो कि हजारों साल तक आगे जारी रहेगी। तो बच्चे पर तो नियंत्रण होना चाहिए कि किन मां बाप को सर्टिफाई करती है सरकार, वही बच्चे पैदा कर सकते हैं। हर कोई करने का सवाल नहीं है। फिर भी अभी कमजोर बच्चे हैं। लेकिन जितने कमजोर बच्चे हैं उनमें से अधिक बच्चे कमजोर इसलिए हैं कि उनकी कभी ट्रेनिंग से नहीं गुजारा गया है कि उनकी कमजोरी दूर हो जाए। अगर सौ बच्चे कमजोर हैं तो उनमें बीस बच्चे ही ऐसे साबित होंगे जिनको ठीक नहीं किया जा सकता, बाकी बच्चे ठीक किए जो सकते हैं। और जो बीस बच्चे ठीक नहीं किए जा सकते हैं उनको उन क्षेत्रों में ले जाना चाहिए जहां कमजोरी बाधा नहीं है, लेकिन साहस की उनको भी जरूरत है।

साहस और कमजोरी में फासला है। कमजोर आदमी अनिवार्य रूप से साहसी नहीं होता है, ऐसा मत समझ लेना। और ताकतवर आदमी अनिवार्य रूप से साहसी होता है, ऐसी भी समझने की कोई जरूरत नहीं है। साहस कुछ इनर-क्वालिटी है, कमजोरी बिलकुल शरीर की बात है। एक कमजोर आदमी भी साहसी हो सकता है अगर वह मौत को झेलने की हिम्मत करता है। और एक ताकतवर आदमी कमजोर हो सकता है। अगर भाग खड़ा हो और मरने से डरता है। तो मेरा कहना है कि कमजोरी मिटाने की कोशिश करनी चाहिए सब तलों--जन्म से लेकर मृत्यु तक। और दूसरी बात, कि अभी जो कमजोर बच्चे हैं उनको तो मिटाया नहीं जा सकता है, उनको डायरेक्शन देने की जरूरत है।

प्रश्न--अस्पष्ट

उत्तर--समझा, समझा। पहले तो कमजोर बच्चे को स्वस्थ बनाने की पूरी चेष्टा करनी चाहिए। मेरा कहना है सौ में से अस्सी बच्चे तो ठीक हो सकते हैं जो बीस बच्चे बचते हैं उनका भी हम दिशा दे सकते हैं। जैसा मेरा कहना है, स्कूल टीचर है स्कूल टीचर के लिए कोई बहुत शक्तिशाली आदमी की जरूरत नहीं है। शक्तिशाली आदमी स्कूल के टीचर बनें, यह फिजूल की बात है। यह ऐसा काम है इसमें साधारण स्वास्थ्य का आदमी भी ठीक है।

प्रश्न--अस्पष्ट

उत्तर--क्योंकि सारे लोग समान नहीं हैं, और समान हो भी नहीं सकते हैं। मैं समझता नहीं, वे शब्द जो हैं हमारे, वे इतने गंदे हो चुके हैं, उसका उपयोग भी नहीं करना चाहिए। वे दोनों भाई हैं और बहादुरी का सवाल नहीं है, वे दोनों यह बताना चाह रहे हैं कि मौत को हम हाथ में लिए हुए है।

और साहस का यह अर्थ है कि आदमी जिंदगी को इतना मूल्यवान नहीं सकता कि उसे भी किसी क्षण खोने से झिझकता हो और डरता हो। जो मैं उस उदाहरण से कहने वाला हूं, कोई उदाहरण पूरा नहीं है। उदाहरण से जो मैं कहने वाला हूं वह यह कि करेज का मतलब क्या है आध्यात्मिक अर्थों में। करेज का आध्यात्मिक अर्थों में एक ही मतलब है कि ऐसा आदमी जो मौत से किसी भी क्षण और किसी भी कारण से भयभीत नहीं है। जो मौत को ऐसे ही अंगीकार कर सकता है जैसे किसी प्रेमी को अंगीकार कर रहा हो। लेकिन इससे ज्यादा मेरा कहने का मतलब नहीं है। उसमें जितना आप सोच सकते हैं सोचें, उसमें मेरा इतराज भी नहीं है कह कुल इतना रहा हूं कि मौत को साक्षात करने की क्षमता विकसित होनी चाहिए बच्चों में, तो हम चरित्र, तो हम व्यक्तित्व और तो एक जातीय गुण पैदा कर सकेंगे जो कि बिलकुल खो गया है।

और मेरी अपनी दृष्टि यह है कि हारी सारी शिक्षा, आज तक की सारी संस्कृति कायरता पैदा करती है, साहस पैदा नहीं करती। और कायरता के कारण इतनी चरित्रहीनता पैदा हुई है, यह बाई प्रोडक्ट है। हम बात करते हैं, आत्मा अमर है, फलां है ढिकां है, लेकिन हम इसलिए बातें करते हैं आत्मा की अमरता की, कि हमको मौत का डर है; और कोई कारण नहीं है। मैं यह नहीं कह रहा कि आत्मा अमर नहीं है। हम जो बातें करते हैं आत्मा की अमरता की वह सिर्फ मौत का भय और डर है। और उस डर का हमने इतना पोषण किया है, इतना पोषण किया है कि एक एक आदमी बिलकुल भयभीत है मरने से। और इस भय में जो आदमी खड़ा हुआ है, उससे आप कुछ करवा सकते हैं। एक आदमी उसकी जोर से गर्दन पकड़ ले और कहे मार डालेंगे, अदालत में चलकर हमें यह कह दो, वह आदमी तैयार है। उसको दिखायी पड़े कि मैं फंस जाऊंगा, वह झूठ बोलने को तैयार है, बेइमानी करने को तैयार है।

प्रश्न--अस्पष्ट

उत्तर--हमेशा सारे ढंग ही वैज्ञानिक है, अगर ढंग है तो! नहीं तो ढंग ही नहीं है। यह जो युवक है आज आपके पास, मेरी दृष्टि में भारत के इतिहास में पहली दफा युवक उस हालत में पहुंचा है कि धार्मिक हो सकता है, इसके पहले तो कभी हो ही नहीं सकता। क्योंकि न तो युवक में विद्रोह था आज के पहले, और जिस युवक में विद्रोह ही नहीं है वह धार्मिक नहीं हो सकता। धार्मिक होने के लिए बड़ी विद्रोह क्षमता चाहिए क्योंकि धार्मिक होने का मतलब यह है कि वह सत्य की खोज में जाता है। और सत्य की खोज में जाने का मतलब यह है कि आपके समाज ने हजार झूठ थोपे हैं जिनको वह तोड़ेगा, तो वह सत्य की खोज में जाने वाला है।

मेरी दृष्टि में भार के भाग्य में एक बहुत कीमती क्षण आया है, अगर वह लड़कों का उपयोग कर सके तो ये लड़के धार्मिक हो सकते है। आपका पुराना लड़का तो धार्मिक हो नहीं सकता था, वह जो--हजूर था। उसमें इनकार करने की ताकत भी नहीं थी। और मेरी यह भी समझ है कि जिस बच्चे में इनकार की ताकत नहीं है इसके हां का कोई मूल्य नहीं है। जो नो नहीं

कह सकता तो उसके यस का दो कौड़ी मूल्य है। तो उसके यस में कोई जान नहीं है। आज पहली दफा बच्चे ने कहा है, तो--पच्चीस चीजों पर और इस बच्चे को अगर हम राजी कर सके और यह कह सके तो इस बच्चे के यश का अर्थ होगा, पूरे मुल्क को बदल देने वाला होगा।

आज तक हिंदुस्तान में जवान था ही नहीं। बूढ़े थे और बूढ़ों के अनुगत थे, जवान नहीं थे। जवान की कोई पीढ़ी नहीं थी हिंदुस्तान में। बूढा आदमी था और बूढे का आज्ञाकारी जवान है। जवान की पीढ़ी विकसित हुई है अभी। यानी अब हमको लगता है कि जवान कुछ अलग है। उसकी अपनी हैसियत खड़ी हो रही है। और वह जो हमें उसमें दिखायी पड़ रहा है उसकी गैरआध्यात्मिकता, वह गैरआध्यातिमकता नहीं है। आपके सारे मूल्य असफल सिद्ध हो चुके हैं। आपने जितनी वैल्यूज आज तक खड़ी की थीं वह सब असफल हो गयी है। बाहर जाने वाली शक्तियां जग रही है। अभी आंख खुलने का वक्त है, अभी आंख बंद करने का उसका वक्त भी नहीं है। अभी वह एक कोने बैठे नहीं सकता, अभी वह सारी एक्टिविटी उसके भीतर मचल रही है। तो मेरी अपनी दृष्टि यह है--मेडीटेशन इन एक्शन, एक नयी प्रक्रिया ध्यान की विकसित होनी चाहिए, और हो सकती है, कठिनाई नहीं है कि हम एक्शन के साथ ध्यान को जोड़ें। जैसे--लड़के कवायद कर रहे हैं, मिल्ट्री की कवायद हो रही है तो कवायद करते वक्त इस भांति उनको समझाया और सिखाया जा सकता है कि वह पूरी कवायद पर अटेंशन दें, वह सिर्फ कवायद ही कर रहे हैं उनका मन और कुछ भी नहीं कर रहा है सिर्फ एक्शन रह जाए।

बुद्ध दो तरह के प्रयोग करते थे ध्यान का। एक तो वह कहते थे बैठकर ध्यान कर और एक को वह कहते थे चलते हुए ध्यान। वह भिक्षुओं को कहते थे एक घंटा बैठकर ध्यान करो फिर एक घंटा चलते हुए ध्यान करो। बैठकर एक बात है ध्यान की ज्यादा आसान है। चलकर ध्यान थोड़ा कठिन है। एक्शन के साथ क्रिया हो रही है और ध्यान। लेकिन युवक के लिए चलकर ध्यान करना आसान है बजाय बैठकर। तो मेरी दृष्टि यह है कि मेरी मिल्ट्री ट्रेनिंग युवक की हो और उसकी मिल्ट्री ट्रेनिंग का अनिवार्य सेटल हिस्सा मेडिटेशन हो। वह चले, खेले, दौड़े।

उन्होंने जापान में एक व्यवस्था खोज ली थी। जापान में जैसे यहां क्षत्रिय होते थे वैसे वहां समुराई जापान में क्षत्रियों का वर्ग था। उन्होंने ध्यान को तलवार बाजी के साथ जोड़ रखा था। तलवार चलाना सिखाते और ध्यान के साथ तलवार चलाओ ध्यानपूर्वक। तो समुराई दो काम कर लेता था। वह तलवार चलाना सीखते सीखते ध्यानस्थ होना भी जान जाता था। और युद्ध के मैदान में समुराई का कोई मुकाबला नहीं था दुनिया में क्योंकि वह जितना शक्तिशाली होता था, जितना मौन होता था, जितना निर्विचार होकर लड़ता था उतना दूसरा आदमी तो निर्विचार भी नहीं था शांत भी नहीं था, वह पच्चीस बातें भी सोच रहा था। समुराई से जीतना मुश्किल था। और धीरे-धीरे तो यह हालत पैदा हुई जापान में कि अगर दो समुराई में कभी तलवार बाजी हो जाए तो कोई नहीं जीत पाया था जीतना ही मुश्किल था

किसी का। क्योंकि वह दोनों ही उतने शांति से इतना मौन, इतने मैडीटेटिविली लड़ते थे कि मुश्किल मामला था कि कोई जी जाता

ठीक उस तरह की कोई व्यवस्था मिल्ट्री ट्रेनिंग के साथ युवकों के लिए खोजनी जरूरी है। और एक संगठन चाहिए युवकों का सारे देख में जो मिल्ट्री के ढंग पर आयोजित हो लेकिन धार्मिक शिक्षण जिसका केंद्र हो। और धार्मिक शिक्षण से मेरा मतलब, ध्यान का शिक्षण। धार्मिक शिक्षण से मेरा मतलब नहीं कि गीता पढ़ाओ उनको, धार्मिक शिक्षण से मेरा मतलब नहीं है कि उनको बैठकर पाठ रटवाओ कि सत्य बोलना अच्छा है। इससे प्रयोजन मेरा नहीं है। धार्मिक शिक्षण का मतलब ध्यान का शिक्षण है। इधर मेरे मन में एक योजना आती है कि एक युवक क्रांति दल पूरे मुल्क में खड़ा किया जाए। उसकी सारी प्रवृत्ति ठीक सैनिक प्रशिक्षण की होगी, लेकिन उसके केंद्र में ध्यान होगा और ध्यान और कर्म को अगर हम जोड़ दें तो हम युवक को धार्मिक बना सकते हैं, अन्यथा नहीं। अभी तक युवक धार्मिक नहीं बन सका क्योंकि ध्यान था। निष्क्रिय वृद्धों के लिए और कर्म था युवकों के लिए। कर्म और ध्यान के बीच कोई सेतु नहीं है इधर मैं सोचता हूं कि वह सेतु होना चाहिए। बचपन से साहस, युवा होने पर ध्यान और कर्म, इन दोनों का संयुक्त रूप जोड़ा जा सकते तो हम एक व्यक्तित्व बना सकते हैं, जिसको धार्मिक युवक कह सकते हैं। और वैसे युवक में क्वालिटी अपने आप पैदा होंगी जो आप लाख कोशिश करके पैदा नहीं कर सकते है। जैसे शांत व्यक्ति में अनिवार्य रूपेण प्रेम पैदा होता है, अशांत व्यक्ति में कभी प्रेम पैदा नहीं हो सकता है। क्योंकि अशांत व्यक्ति इतना भीतर परेशान है कि प्रेम करने का सवाल कहां है? वह घृणा कर सकता है, क्रोध कर सकता है द्वेष कर सकता है यार् ईष्या कर सकता है लेकिन प्रेम नहीं कर सकता है। और अगर युवक प्रेम करने में समर्थ हो तो आज युवक की जितनी तोड़ फोड़ दिखाई पड़ रही है वह एकदम विलीन हो जाएगी। एकदम विलीन हो जाएगी। और आप लाख समझाए उसको कि तुम बस मत जलाओ, तुम क्लास का फर्नीचर मत तोड़ो। आदमी सोच ही हनीं पा रहा है, वह फर्नीचर तोड़ रहा है, बस जला रहा है, एक साइकिक मामला है उसके भीतर। उसके भीतर चित्त ऐसे है कि सिवाय तोड़ने के उसे कुछ सूझ ही नहीं रहा है। अगर आप बस न जलाने देंगे तो और खतरनाक चीजें तोड़ेगा वह।

जुंग एक मनोवैज्ञानिक था। उसके पास एक आदमी लाया गया। वह एक दफ्तर में नौकर था और वह आदमी धीरे-धीरे पागल होता चला गया था। पागल कुल यह था कि जो उसका बस था वह उसे डांटना या अपमानित करता तो उसके मन में होता कि निकालूं जूता और इसको मार दूं। लेकिन वास को जूता कैसे मारा जा सकता है?वह अपने को रोक लेता था। लेकिन यह बात बढ़ती चली गयी, आब्सेशन हो गया। मालिक कुछ कहे, उसका हाथ जूते पर जाए और घबराकर अपने को रोक लेता। उसे यह डर पैदा हो गया कि किसी दिन मैं अगर निकाल के मार ही न दूं, नहीं तो मुश्किल हो जाएगी, तो उसने छुट्टी ले ली और वह घर पर बैठ गया। लेकिन घर बैठे गया तो उसका ही चिंतन चलने लगा उसे कि कहीं रास्ते पर वह मुझे मिल जाए और मैं जूता निकाल कर मार दूं।

जुंग के पास उसे लाए। जुंग ने कहा, यह ठीक हो जाएगा। मालिक का एक चित्र ले आओ और रोज इससे कहो कि दफ्तर जाने के पहले और दफ्तर से आने के बाद पांच जूते मालिक के चित्र को मारकर, तुम जाओ। लोगों ने कहा, यह क्या पागलपन है, इससे क्या होगा? लेकिन जुंग ने कहा, तुम करो, रिलीजियसली तुम इसको करो। ऐसा नहीं, जब पूजा करता है आदमी रोज नियमित वक्त पर उसके जूते मारने में। वह आदमी भी हंसा। लेकिन उसे खुशी हुई। यह बात कुछ लगी, दिल में बहुत दिन से यह बात थी। उसने पांच जूते सुबह और पांच जूते शाम को मारकर यह दफ्तर जाना शुरू किया। और पहले जूते मार कर गया तो वह उस आदमी ने लौटकर कहा कि आज मुझे मालिक पर उतना क्रोध नहीं आया जितना मुझे रोज आता था। और पंद्रह दिन के भीतर वह आदमी दफ्तर में शांति से काम करने लगा। और मालिक ने खुद कहा, इस आदमी में क्या फर्क हो गया? यह आदमी बड़ा शांत मालूम पड़ रहा है। कोई फर्क नहीं हो गया, और महीने भर में वह आदमी नार्मल हो गया। एक साल भी चला गया और वह खुद हंसने लगा कि यह क्या पागलपन था कि मुझे जूता मारने का खयाल आता था।
हमने उस एक निकास दिया। हिंदुस्तान के युवक के पास शक्ति है। और शांति बिलकुल हनीं है। अशांति चित्त है और शक्ति पास है। अशांत चित और शक्ति पास होगी तो टूट-फूट होगी, विघटन होगा, आज्ञा हीनता होगी, सब तरह का उपद्रव पैदा होगा, शिक्षक और नेता और ये पुरोहित समझा रहे हैं युवकों को कि तुमको यह बुरा काम नहीं करना चाहिए कोई भी यह नहीं देख रहा है कि इसके भीतर साइकिक स्थिति ऐसी है कि आप इधर से रोकोगे उधर करेगा उधर से रोकोगे कहां करेगा। उसकी साइकिक स्थिति बदलने की जरूरत है।
पत्रकार-वार्ता, बंबई, दिनांक २१ सितंबर १९६८

नाचो शून्यता है नाच

एक बहुत अच्छा प्रश्न है। पूछा है, श्रद्धा के बिना शास्त्र का अध्ययन नहीं, अध्ययन के बिना ज्ञान नहीं। और ज्ञान के बिना आत्मा का अनुभव नहीं होता है।

श्रद्धा के बिना शास्त्र का अध्ययन क्यों नहीं होगा? हमारी धारणा ऐसी है कि या तो हम श्रद्धा करेंगे या अश्रद्धा करेंगे। हमारी धारणा ऐसी है कि या तो हम किसी को प्रेम करेंगे या घृणा करेंगे। तटस्थ हम हो ही नहीं सकते। जो श्रद्धा से शास्त्र का अध्ययन करेगा वह भी गलत, जो अश्रद्धा से शास्त्र का अध्ययन करेगा वह भी गलत है। शास्त्र का ध्यान तटस्थ होकर करना होगा। तटस्थ होकर ही कोई अध्ययन हो सकता है। श्रद्धा का अर्थ है आप पक्ष में पहले से मानकर बैठ गए हैं, पक्षपात से भरे हैं। अश्रद्धा का अर्थ है आप पहले से ही विपरीत

मानकर बैठ गए। आप पक्षपात से भरे हैं। पक्षपातपूर्ण चित्त अध्ययन क्या करेगा? पक्षपातपूर्ण चित्त ने तो पहले से पक्ष तय कर लिया। वह शास्त्र में अपने पक्ष के समर्थन में दलीलें खोज लेगा और कुछ नहीं करेगा। पक्षपात शून्य होकर ही कोई अध्ययन कर सकता है। इसलिए मुझे श्रद्धा भी व्यर्थ मालूम होती है, अश्रद्धा भी व्यर्थ। असल में श्रद्धा अश्रद्धा दोनों ही अश्रद्धाएं हैं।

एक आदमी ईश्वर पर श्रद्धा करता है, एक आदमी ईश्वर पर अश्रद्धा करता है। असल में अगर हम गौर से देखें तो उसमें एक ईश्वर के होने पर श्रद्धा करता है, एक ईश्वर के न होने पर श्रद्धा करता है वे दोनों ही श्रद्धाएं हैं। अश्रद्धा भी श्रद्धा है, विपरीत श्रद्धा है। इसलिए न तो श्रद्धा और न अश्रद्धा। पक्षपात शून्य होकर ही कोई सम्यक अध्ययन कर सकता है। हमारे इस जगत में वैसा सम्यक अध्ययन बहुत कम लोग करते हैं। परिणाम में भी कुछ उपलब्ध नहीं होता।

दूसरी बात उन्होंने कही, शास्त्र के अध्ययन के बिना ज्ञान नहीं। जिन्होंने भी पूछा है, वे शायद पांडित्य को ज्ञान समझ रहे हैं। शास्त्र के अध्ययन से पांडित्य उपलब्ध होगा, ज्ञान उपलब्ध नहीं होगा। ज्ञान उपलब्ध नहीं करना है, ज्ञान तो हमारा स्वरूप है। शास्त्र से स्वरूप का कैसे पता चलेगा? और अगर शास्त्र के स्वरूप का पता चल जाता तो शास्त्र अध्ययन करवा देना बहुत कठिन बात नहीं है, आत्मज्ञान बहुत आसान हो जाता। दुनिया में ऐसे लोग हुए जिन्होंने कोई शास्त्र नहीं पढ़े और आत्मज्ञान को उपलब्ध हुए जिनमें रामकृष्ण थे या ईसा थे। ये कुछ पढ़े लिखे लोग ही थे लेकिन इन्हें ज्ञान उत्पन्न हुआ। और दुनिया में ऐसे पढ़े लिखे लोगों की भीड़ है जिनका चित्त पूरा शास्त्र से भरा हुआ है और उन्हें आत्मज्ञान का कोई पता भी नहीं है।

शास्त्र के अध्ययन से आत्मज्ञान का कोई संबंध नहीं है। आत्म ज्ञान का संबंध साधना है, अध्ययन से नहीं है। आत्मज्ञान का संबंध और ज्ञान के लिए नहीं कह रहा हूं। इंजीनियरिंग पढ़नी हो, डाक्टरी पढ़नी हो शास्त्रज्ञान से हो जाएगा। पर स्व के संबंध में कोई सूचना पानी हो तो शासन से हो जाएगी। स्व के संबंध में बोध शास्त्र से नहीं हो सकता। शास्त्र तो विचार को परिपक्व कर देंगे। आत्मज्ञता तो विचार के टूटने से होता है। शास्त्र तो बुद्धि को एक विशिष्ट तर्क भर देंगे।

जैसे सोवियत रूस है, चालीस वर्षों से अपने बच्चों को ईश्वर और आत्मा विरोधी पढ़ाए। चालीस वर्षों में सोवियत रूस के बीच करोड़ लोग--ईश्वर और आत्मा नहीं है, ऐसा उनके ज्ञान हो गया। चालीस वर्ष के प्रचार प्रोपेगेंडा ने सोवियत रूस में यह स्थिति पैदा कर दी कि बीस करोड़ लोगों को यह ज्ञान हो गया कि आत्मा और ईश्वर नहीं है। इसको ज्ञान चाहिए? इसको ज्ञान नहीं कह सकते। यह केवल विचार का परिपक्व कर देना हो गया एक पक्ष में।

और आप सोचे हैं, आपकी आत्मा का ज्ञान हो गया है तो आप भी गलती में हैं। आपको मुल्क भी पांच हजार वर्ष से प्रचार कर रहा है कि आत्मा है, आत्मा है, ईश्वर है। उस प्रोपेगेंडा से प्रभावित हैं। एक प्रोपेगेंडा से वे प्रभावित हैं, एक प्रचार उनके चित्त में बैठ गया, एक प्रचार आपके चित्त में बैठा है। दोनों ही प्रचार हैं। प्रचार से एक विचार परिपक्व हो जाता है, अनुभव नहीं होता है। मेरा मानना है, अगर उनको सत्य का अनुभव करना है तो अपना प्रचार छोड़ देना पड़ेगा। आत्म-सत्य का अनुभव करना होगा तो अपना प्रचार छोड़ना पड़ेगा। प्रचार प्रभावित है हमारे ऊपर। सब बाहर के प्रभाव छोड़ देने होंगे। निष्प्रभाव स्थिति में जो स्वयं में भीतर है उसका जागरण होता है। प्रभाव नहीं, क्योंकि प्रभाव तो बाह्य है। प्रभाव का अभाव--उसमें स्वयं को बोध अनुभव होता है।

आत्मज्ञान शास्त्र से नहीं, स्वयं से उत्पन्न होता है। आत्मज्ञान शब्द से नहीं, निशब्द से उत्पन्न होता है। आत्मज्ञान विचार से नहीं निर्विचार से उत्पन्न होता है। आत्मज्ञान विकल्पों के इकट्ठा करने से नहीं निर्विकल्प समाधि में समाधान में उत्पन्न होता है। इसलिए शास्त्र आत्मज्ञता नहीं देता, स्वयं का बोध ही, स्वयं के प्रति जागना ही आत्मज्ञान का संबंध और ज्ञान के लिए नहीं कह रहा हूं। इंजीनियरिंग पढ़नी हो, डाक्टरी पढ़नी हो शास्त्रज्ञान से हो जाएगा। पर स्व के संबंध में कोई सूचना पानी हो तो शास्त्र से हो जाएगी। स्व के संबंध में बोध शास्त्र से नहीं हो सकता। शास्त्र तो विचार को परिपक्व कर देंगे। आत्मज्ञान तो विचार के टूटने से होता है। शास्त्र तो बुद्धि को एक विशिष्ट तर्क भर देंगे।

जैसे सोवियत रूस है, उन्होंने चालीस वर्षों से अपने बच्चे को ईश्वर और आत्मा विरोधी पढ़ाए। चालीस वर्षों में सोवियत रूस के बीच करोड़ लोग--ईश्वर और आत्मा नहीं है, ऐसा उनको ज्ञान हो गया। चालीस वर्ष के प्रचार प्रोपेगेंडा ने सोवियत रूस में यह स्थिति पैदा कर दी कि बीस करोड़ लोगों को यह ज्ञान हो गया कि आत्मा और ईश्वर नहीं है। इसको ज्ञान कहिएगा? इसको ज्ञान नहीं कह सकते। यह केवल विचार का परिपक्व देना हो गया एक पक्ष में।

और आप सोचते हैं, आपकी आत्मा का ज्ञान हो गया है तो आप भी गलती में हैं। आपका मुल्क भी पांच हजार वर्ष से प्रचार कर रहा है कि आत्मा है, आत्मा है, ईश्वर है। उस प्रोपगेंडा से प्रभावित हैं। एक प्रोपेगेंडा से वे प्रभावित हैं, एक प्रचार उनके चित्त में बैठ गया, एक प्रचार आपके चित्त में बैठा है। दोनों ही प्रचार हैं। प्रचार से एक विचार परिपक्व हो जाता है, अनुभव नहीं होता है। मेरा मानना है, अगर उनको सत्य का अनुभव करना है तो अपना प्रचार छोड़ देना पड़ेगा। आत्म-सत्य का अनुभव करना होगा तो अपना प्रचार छोड़ना पड़ेगा। प्रचार प्रभावित है हमारे ऊपर। सब बाहर के प्रभाव छोड़ देने होंगे। निष्प्रभाव स्थिति में जो स्वयं में भीतर है उसका जागरण होता है। प्रभाव नहीं, क्योंकि प्रभावित तो बाह्य है। प्रभाव का अभाव--उसमें स्वयं का बोध अनुभव होता है।

आत्मज्ञान शास्त्र से नहीं, स्वयं से उत्पन्न होता है। आत्मज्ञान शब्द से नहीं, निशब्द से उत्पन्न होता है। आत्मज्ञान विचार से नहीं निर्विचार से उत्पन्न होता है। आत्मज्ञान विकल्पों

के इकट्ठा करने से नहीं निर्विकल्प समाधि में समाधान में उत्पन्न होता है। इसलिए शास्त्र आत्मज्ञान नहीं देता, स्वयं का बोध ही, स्वयं के प्रति जागना ही आत्मज्ञान देता है। मैं समझता हूं मेरी बात समझ में आयी होगी।
बहुत सुंदर प्रश्न पूछा है--विचार शून्य होकर स्मरण किसका करें? स्मरण करें तो विचार शून्य कैसे हो सकें?
शून्य होकर किसी का स्मरण नहीं करना है। स्मरण विचार ही है स्मरण तो हम चौबीस घंटे कर रहे हैं किसी न किसी का, इसलिए स्व का विस्मरण हो गया है। या तो हम धन का स्मरण कर रहे हैं, मित्रों का स्मरण कर रहे हैं। अगर मित्र और धन छूटे तो भगवान का स्मरण कर रहे हैं लेकिन हम किसी न किसी के स्मरण से भरे हैं। इसलिए स्व का विस्मरण हो गया है। अगर समस्त पर का स्मरण छूट जाए तो स्व का स्मरण आ जाएगा। स्मरण किसी का करना नहीं है। स्मरण नहीं करना है। दुकान का स्मरण करते थे, उसे छोड़ा तो अरिहंत का स्मरण करने लगे। वह सब स्टीटयूड़े हो गया। पहले भी किसी पर अरिहंत का स्मरण कर रहे थे, अब भी पर का स्मरण कर रहे हैं। समस्त पर के स्मरण के शून्य हो जाने पर स्व का जो विस्मरण हो गया है उसका स्मरण हो जाता है। स्मरण करना नहीं होता है, स्मरण हो जाता है। कुछ दोहराना नहीं होता है, कुछ दिख जाता है।
शून्य का अर्थ किसी का स्मरण नहीं, समस्त का विसर्जन है। हमने अपने को खोया नहीं है, हमने केवल अपने को विस्मरण किया है। हम अपने को खो सकते ही नहीं। स्वरूप को खोया नहीं जा सकता, केवल विस्मरण है। और विस्मरण क्यों किया? विस्मरण इसलिए किया कि दूसरी बातों के स्मरण ने चित्त को भर दिया है। मैं दूसरी चीजों से भरा हुआ हूं। दूसरे शब्दों से, विचारों से भरा हुआ हूं। अगर वे सारे शब्द, सब विचार और सारा स्मरण विसर्जित हो जाए तो स्व का बोध उत्पन्न हो जाएगा। स्मरण नहीं करना है, विस्मरण करना है।

श्री रमण से किसी ने पूछा था, आकर कि क्या सीखूं कि मुझे प्रभु उपलब्ध हो जाए? श्री रमण ने कहा, सीखना नहीं है, अनलर्न करना है। सीखना नहीं है, भूलना है। बहुत स्मरण है, बही बाधा है। समस्त स्मरण छूट जाए। स्व-स्मरण जाग्रत हो जाता है।

किन्हीं ने पूछा है, जब बुद्धि असफल हो जाती है तो क्या हम श्रद्धा का सहारा न लें।

श्रद्धा भी बुद्धि है। श्रद्धा बौद्धिक होती है। हम बड़ी मुश्किल में हैं दुनिया में। हम समझते हैं अश्रद्धा बौद्धिक होती है और श्रद्धा बौद्धिक नहीं होती। अश्रद्धा भी बौद्धिक होती है, श्रद्धा भी बौद्धिक होती है। किससे श्रद्धा करते हैं? जो मानता है कि मैं ईश्वर को मानता हूं, वह किस चीज से मान रहा है ईश्वर को? बुद्धि से मान रहा है? जो कहता है, मैं ईश्वर को नहीं मानता, वह किससे नहीं मान रहा है? वह बुद्धि से नहीं मान रहा है। धार्मिक लोगों से एक उलझाव पैदा कर दिया है। वे यह सोचते हैं कि श्रद्धा तो बौद्धिक नहीं है। और अश्रद्धा बौद्धिक

है अश्रद्धा भी बौद्धिक है, श्रद्धा भी बौद्धिक है। अगर आपकी बुद्धि पूरी असफल हो जाए, आप भगवान को उपलब्ध हो जाएंगे। बुद्धि ही बाधा है। अगर आपकी बुद्धि बिलकुल असफल हो जाए खोजने में और यह कह दे कि मेरी बुद्धि कुछ भी नहीं खोजती तो न वह बुद्धि श्रद्धा करेगी, न अश्रद्धा क्योंकि श्रद्धा भी खोज है, अश्रद्धा भी खोज है। जो यह कह रहा है, ईश्वर नहीं है उसने भी कुछ खोज लिया। जो यह कह रहा है ईश्वर है, उसने भी कुछ खोज लिया। दोनों की बुद्धि सफल हो गयी।

अगर बुद्धि टोटल फेल्योर हो जाए तो आप सत्य को उपलब्ध हो जाएंगे। अगर बुद्धि यह कह दे कि मैं कुछ भी नहीं खोज पा रही, और बुद्धि पर से आस्था उठ जाए और बुद्धि से आप बिलकुल निराश हो जाएं तो आपके भीतर प्रज्ञा का जागरण हो जाएगा। जब तक बुद्धि को आस्था बनी है--चाहे श्रद्धा में, चाहे अश्रद्धा में तब तक प्रज्ञा का, तब तक इंटयूशन का जागरण नहीं होगा। इंटेलीजेंस बिलकुल असफल हो जाए और आपको आस्था उस तरफ से बिलकुल उठ जाए कि बुद्धि से कुछ भी न होगा तो आपके भीतर एक नया द्वार खुल जाएगा जिसको इंटयूशन कहते हैं, जिसको प्रज्ञा कहते हैं।

बुद्धि की असफलता बड़ा सौभाग्य है। बुद्धि असफल हो जाए, इससे बड़ी और कोई बात नहीं।
एक अंतिम प्रश्न और है--ईश्वर और आत्मा में क्या संबंध है? क्या आत्मा ही परमात्मा है?
मैं कोई उत्तर आपको इस संबंध में दूं तो गलत होगा। क्योंकि मैंने कहा, आत्मा और परमात्मा के संबंध में बाहर से कोई कुछ भी नहीं दे सकता है। अगर मैं खुद ही कोई उत्तर दूं तो मैं अपनी ही बात की गलती में चला जाऊंगा। मैं आपको नहीं कहता कि आत्मा क्या है और परमात्मा क्या है? मैं आपको इतना ही कहता हूं कि कैसे उन्हें जाना जा सकता है। आत्मा क्या है, यह कहना बिलकुल संभव नहीं है। आज तक संभव नहीं हुआ है किसी व्यक्ति ने इस जगत में यह नहीं कहा कि आत्मा क्या है। जो जागे हैं उस सत्य के प्रति उन सबने यही बताया कि हम कैसे जागे हैं; क्या है, नहीं--उस क्या है के प्रति हम कैसे जागे हैं।

तो मैं आपको नहीं कहूंगा कि आत्मा क्या है। मैं तो यही कहूंगा कि कुछ है जो अभी अज्ञात है, और ज्ञात हो सकता है। और ज्ञात होने की विधि यह है कि उसके संबंध में अभी कोई विचार परिपक्व न करें, समस्त, विचार छोड़कर शून्य हों और देखें। और भी एक विचार आपको दे दूं, इससे कोई अर्थ न होगा। वह एक विचार और आपके मस्तिष्क में बैठ जाएगा। मैं तो कह रहा हूं, समस्त विचार छोड़ दें। तो मैं और एक एडीशन नहीं करूंगा। आत्मा के संबंध में सब विचार छोड़ दें, मौन हो जाए, आपको दिखेगा क्या है। और उसी में आपको यह भी दिखेगा कि वही आत्मा समस्त में व्याप्त है या नहीं है। वही आत्मा अगर समस्त में दिखायी पड़े तो अर्थ हुआ, परमात्मा है। जो एक के भीतर व्याप्त है, अगर वही चैतन्य, वैसा ही चैतन्य समग्र के भीतर व्याप्त है तो उस टोटल कांसेसनेस का नाम

परमात्मा है। समस्त के भीतर जो व्यस्त चैतन्य है उसका नाम परमात्मा है। समस्त के भीतर व्याप्त जो जड़ है, उसका नाम प्रकृति है। और प्रत्येक व्यक्ति जड़ और प्रकृति, प्रकृति और परमात्मा का जोड़ है। प्रत्येक के भीतर शरीर है और प्रत्येक के भीतर अशरीरी चैतन्य है। मेरे लिए रास्ता है कि मैं शरीर के पार जो अशरीर चैतन्य है उसको अनुभव कर लूं। उसका अनुभव मुझे जगत सत्य का अनुभव दे देगा।

मैं कुछ भी नहीं कहूंगा कि परमात्मा है या नहीं, आत्मा कैसा है। मैं इतना ही कहूंगा कि जो भी है उसे जानने का उपाय है। उपाय बताया जा सकता है, उसे जानने की विधि बतलायी जा सकती है। जैसा मैं निरंतर कहता हूं, अंधे को प्रकाश नहीं बताया जा सकता, आंख सुधारने का उपाय बताया जा सकता है। अंधे का प्रकाश के संबंध में कोई सिद्धांत नहीं समझाया जा सकता, लेकिन आंख के उपचार की व्यवस्था बतायी जा सकती है। आंख सुधर जाए प्रकाश दिखेगा। प्रकाश को देखना पड़ेगा, आंख सुधर सकती है। हमारे भीतर अन्य प्रज्ञा जाग्रत हो सकती है, उससे जो दर्शन होगा, वह जगत सत्य के संबंध में कुछ हमको दिखा देगा। उसके पूर्व कोई दूसरा उसे दिखाने में न समर्थ है। और अगर कोई दावा करता हो तो दावा गलत है।

...और जब हम पूछते हैं कि संन्यासी को क्या मार्ग हो? हमारा मतलब यह है कि हम संन्यासी नहीं हैं। सामान्य घर गृहस्थी में हैं। हम क्या करें? यही मतलब है न?

हम कहीं हो, मार्ग हो सकता है क्योंकि आत्मा प्रतिक्षण उपस्थित तो है मेरे भीतर। मैं बाहर घूम रहा हूं और भीतर जाने का मार्ग नहीं पाता हूं। निरंतर यह सुनने पर कि भीतर जाना है। मेरा सारा घूमना बाहर ही होता है और भीतर जाना नहीं हो पाता। तो असल में कुल इतना समझ लेना है कि बाहर मैं किन वजहों से घूम रहा हूं, कौन से कारण मुझे बाहर घुमा रहे हैं? अगर वे कारण मेरे हाथ छूट जाए तो मैं भीतर पहुंच जाऊंगा।

प्रश्न--निर्विचार कितनी देर तक रहा जाए, क्या चौबीस घंटे तक रहा जाए?

उत्तर--नहीं, चौबीस घंटे की बात नहीं है। अगर दस मिनिट भी परिपूर्ण निर्विचार में जा सकते हैं आप तो चौबीस घंटे धीरे-धीरे आप पाएंगे सब काम करते हुए--पड़े रहने की कोई जरूरत नहीं है--सब काम करते हुए। बात करते हुए, बोलते हुए, भीतर एक शून्य स्थापित बना रहेगा। एक बारगी थोड़ा सा समय तोड़कर चौबीस घंटे में आधा घंटा पंद्रह मिनट। उस पंद्रह मिनट में प्राथमिक रूप से क्रियाएं छोड़कर शून्य में जाना पड़ता है, पहले पहले, और जब एक दफा शून्य का अनुभव हो गया तब तो क्रियाओं के बीच भी शून्य में आ जा सकता है। चौबीस घंटे पड़ा नहीं रहना है, आधा घंटा जरूर पड़ा रहना है शुरुआत में। वह इसलिए कि काम में अगर हम बहुत व्यस्त हैं तो विचार को छोड़ना कठिन होगा शुरू में। विचार छोड़ना ही कठिन है। फिर काम में और व्यस्त थे और काम के कारण ही हममें विचार चलते हैं। तो छोड़ना कठिन होता है।

इसलिए शुरुआत में आधा घंटा निष्क्रिय ध्यान करना है, कोई क्रिया नहीं कर रहे हैं हम, चुपचाप पड़े हुए हैं, सिर्फ विचार को शून्य का भाव कर रहे है, सिर्फ विचार को शून्य में ले

जाने का भाव कर रहे हैं। जब आधा घंटा निष्क्रिय ध्यान आ जाए, निष्क्रिय शून्यता आ जाए फिर सक्रिय ध्यान करना चाहिए। फिर क्रिया कर रहे हैं और साथ में चित्त शून्य कर कहे हैं, इसका उपाय भी कर रहे हैं। चल रहे हैं साथ-साथ--चल भी रहे हैं और चित्त शून्य रहे, इसका भी भाव कर रहे हैं। खाना खा रहे हैं, खाना भी खा रहे हैं और चित्त शून्य में है, इसका भी भाव कर रहे है। फिर धीरे-धीरे वह जो निष्क्रियता हमें उपलब्ध हुआ उसका उपयोग सक्रियता में करना होता है। और जब वह सक्रिय रूप से भी पूरा हो जाए तो जानना चाहिए वह स्थित हो गया है। जब वह चौबीस घंटे सतत बना रहे, उठते बैठते, सोते जागते स्थिति बनी रहे तब जानना चाहिए वह सक्रिय ध्यान उपलब्ध हो गया। अगर सक्रिय ध्यान उपलब्ध हो जाए तो जीवन में अदभुत आनंद का अनुभव होगा।

प्रश्न--अस्पष्ट

उत्तर--वह सक्रिय ध्यान का प्रयोग है जागरूकता। समस्त क्रियाओं के प्रति, चित्त की क्रियाओं के प्रति शून्य में भी जाने का माध्यम भी जागरूकता ही है, जैसे आधा घंटा रहेंगे तो आप क्या करेंगे, उस आधा घंटा में चित्त में आपके जो भी विचार चल रहे हों उनके प्रति केवल जागरूक होना है, केवल साक्षी होना है। और क्या करिएगा? साक्षी भर हो जाना है, देखते रहे चुपचाप वह चले। लेकिन हमारे देखने में बाधा आती है, हम तल्लीन हो जाते हैं, साक्षी नहीं रह पाते। हम कब उन्हीं विचारों में एक हो गए उसका पता नहीं रहता है। यह बोध मिट जाता है, मूर्च्छा आ जाती है। एक विचार आया मन में, कोई स्मृति आयी। हम देखने वाले नहीं रह जाते, उसी विचार और उस प्रवाह के हिस्से हो--यह मूर्च्छा है।

और इसके विपरीत जागरूकता है कि हम उसके हिस्से नहीं हो रहे। विचार आ रहा है, हम ऐसे ही देख रहे हैं जैसे हम पर्दे पर फिल्म देखते हैं। हम चुपचाप देख रहे हैं। हम कोई उसके साथ आइडेंटिटी नहीं कर रहे हैं अपने को, अपने को जोड़ नहीं रहे हैं। हम खड़े हैं, और हम देख रहे हैं। थोड़े दिन के अभ्यास से यह भाव होना आसान हो जाएगा। अभी तो एकदम से दिक्कत होती है क्योंकि क्षण भर हम खड़े रहेंगे, फिर हमको होश आएगा कि अरे, हम उसी में संलग्न हो गए! तो निरंतर इसका उपयोग करने से आधा घंटा रोज--कुछ ही दिनों में आधा घंटे में तो स्पष्ट रूप से आप जागरूक रह पाएंगे। और जब आधा घंटे में जागरूक रह पा सकते हैं तो फिर उसका विकसित प्रयोग भी है। धीरे-धीरे क्रियाओं में भी और तब क्रियाओं में भी जागरूकता आ जाए।

गांधी जी के पास शुरू-शुरू में विनोबा जी गए थे। विनोबा जी में अपनी एक बात है कि वह किसी भी काम को परिपूर्ण कुशलता से करन--इनको हरेक बात में वैसा ध्यान रहता है। जो भी काम करना है उसकी पूरी कुशलता पानी है। जब उन्होंने चर्खा कातना शुरू किया तो उन्होंने इतनी अच्छी पोनी बनायी कि गांधी जी दंग रह गए। उन्होंने कहा कि इससे अच्छा पोनी बनाने वाला हमारे पास कोई आदमी नहीं है। फिर उन्होंने खर्चे में भी इतने सुधार किए कि गांधी जी दंग रह गए। फिर वह सूत भी इतना महीन कातने लगे कि गांधी जी ने कहा कि यह सूत कातने का आचार्य है। यह सब होने के बावजूद विनोबा जी ने गांधी से पूछा कि

मैंने सबसे अच्छी व्यवस्था कर ली, चर्खा मेरा आपसे बेहतर हो गया है। मेरी पोनी आपसे अच्छी हो गयी है। मेरी कातने में कुशलता आ गयी है लेकिन मेरा अपना धागा टूट क्यों जाता है? और आपका धागा खराब पोनी में भी नहीं टूटता।

गांधी जी ने कहा, उसका संबंध चर्खे से नहीं, उसका संबंध चित्त से है। तुम स्मरण रखना, जब तुम मूर्छित हो जाओगे तभी धागा टूट जाएगा। धागे को चला रहे हो, चित्त कहीं और चला गया, धागा टूट जाएगा। गांधी जी ने कहा, मैं अमूर्छित कातता हूं। जब कात रहा हूं तक चित्त में और कोई विचार ही नहीं है, बस कातने की क्रिया भर के प्रति जागरूकता रह गयी है और कात रहा हूं। न चित्त कुछ सोच रहा है, न विचार कर रहा है, न कोई स्मृति आ रही है, न कोई भविष्य की और कल्पना बन रही है। बस चर्खे के उस कातते धागे कि अतिरिक्त मेरे चित्त में उस समय कुछ भी नहीं है। सिर्फ धागा कत रहा है और मैं हूं। धागा नीचे जा रहा है और मैं हूं, धागा ऊपर जा रहा है और मैं हूं। मैं केवल एक देखने वाला मात्र रह गया हूं और धागे की क्रिया चल रही है। क्रिया है और भीतर जागरूकता है इसलिए धागा नहीं टूटता। गांधी जी इसीलिए बाद मग अपने चर्खे कातने की प्रार्थना कहने लगे, ध्यान कहने लगे। वह कहने लगे मेरा ध्यान तो चर्खा कातने में ही हो जाता है।

अगर हम बुद्ध महावीर को समझें तो हम हैरान हो जाएंगे कि चौबीस घंटे की क्रियाएं ध्यान में उठती हैं। वे जो भी कह रहे हैं वह ध्यान ही होता है। क्रिया कर रहे हैं, चित्त परिपूर्ण शांत है और जागरूक है। हमारा जीवन इस तरह के ध्यान के बिलकुल विपरीत है। हम चौबीस घंटे मूर्च्छा की तलाश कर रहे हैं। चौबीस घंटे हम किसी तरह का इंटाक्सिकेंट खोज रहे हैं--चाहे सिनेमा खोजते हों, चाहे गीत सुनते हों वहां खोजते हों, चाहे ग्रंथ पढ़ते हों, वहां खोजते हों, चाहे मंदिर में जाकर भजन कीर्तन करते हो वहां खोजते हों। हम चौबीस घंटे यह खोज रहे हैं कि किसी तरह मैं अपने को भूल जाऊं। और। सी को सुख भी कहते हैं। जहां-जहां हम अपने को भूल जाते हैं, कहते हैं बड़ा सुख आया।

असल में हमें अपना खुद का स्मरण बहुत दुखद है और हमारा होगा, हमारा एक्जिस्टेंस ही दुख है। हम सब पच्चीस रास्ते से खोज रहे हैं। वह रास्ते फिर चाहे कोई भी हों। जहां-जहां हमको थोड़ी देर का तल्लीनता आ जानी है, हम अपने को भूल जाते हैं। वहीं हमको सुख मालूम होता है। ध्यान तो हमारा बिलकुल विपरीत। ध्यान का कहना है, जहां-जहां हमें तल्लीनता है, वहीं-वहीं हम मूर्छित हैं। किसी में तल्लीन नहीं होता है, समस्त के प्रति जागरूक होना है।

प्रश्न--कार्य में भी तल्लीन नहीं होना है।

उत्तर--अगर आप ठीक से समझियेगा, किसी कार्य में अगर आप पूरे तल्लीन हैं, पूरे तल्लीन हैं--तल्लीनता बिलकुल दूसरी बात है और जागरूकता बिलकुल दूसरी बात है। अगर किसी कार्य में आप पूरे तल्लीन हैं तो आप शेष जगत के प्रति एकदम मूर्छित हो जाएंगे।

एक आदमी के मकान में आग लग गयी है और वह भागा चला जा रहा है कोई उसको रास्ते में नमस्कार करता है, उसे दिखायी नहीं पड़ता है, उसको सुनायी नहीं पड़ता है। असल में

वह एक बात में तल्लीन है कि उसके मकान में आग लग गयी है, वह भागा जा रहा है। अभी उसका चित्त सब जगह अनुपस्थित है, वहीं उपस्थित है और जागरूकता बिलकुल दूसरी चीज है। जागरूकता में चित्त सब जगह समानरूपेण उपस्थित है चित्त किसी एक केंद्र पर जागकर सब पर नहीं खो गया है चित्त केवल जाग रहा है, चाहे कोई भी केंद्र हो।

तल्लीनता का हम इसलिए मूल्य मानते हैं जीवन में कि हमारी गैरतल्लीनता कार्य में अकुशलता बन जाती है। जैसे एक आदमी कोई काम कर रहा है और चित्त उसका और कहीं लगा हुआ है। इसको हम कहते हैं, यह तल्लीन नहीं है। असल में यह और कहीं तल्लीन है। अगर हम ठीक से समझें, इसको यह नहीं कहना चाहिए कि तल्लीन नहीं है, असल में यह अन्य किसी जगह पर तल्लीन है। तल्लीन तो यह है, यहां तल्लीन नहीं है। इसलिए हम कहते हैं, काम में तल्लीन हो जाओ। तो एक तो यह आदमी है कि काम कुछ कर रहा है और कही तल्लीन और है। दूसरा आदमी वह है कि वहां वह काम कर रहा है वहीं तल्लीन है। वह और शेष जगह अनुपस्थित है। और तीसरा आदमी वह है जो केवल जागरूक है और काम कर रहा है। वह तल्लीन कहीं भी नहीं है।

ऐसा आदमी जो किसी काम में तल्लीन नहीं है, केवल जागरूक है, स्वयं में तल्लीन होगा। अगर वह कहीं भी तल्लीन नहीं और सिर्फ जागरूक है जगत के प्रति तो स्वयं में तल्लीन होगा। अगर स्वयं में तल्लीनता आनंद है। पर में तल्लीनता सुख है और स्वयं में तल्लीनता आनंद है। पर मग तल्लीनता से हम स्वयं को भूल जाते हैं। और समस्त पर के प्रति तल्लीनता टूट जाए, पर के प्रति केवल अवेयरनेस रह जाए, केवल होश मात्र रह जाए तो उस स्थिति में वह जो तल्लीनता होने की हमारी क्षमता है--क्षमता हमसे जरूर है--वह जो तल्लीन होने की क्षमता है वह कहीं और में तल्लीन अगर हमने नहीं होने दिया तो क्षमता स्वयं में तल्लीन हो जाएगी। वह व्यक्ति स्वस्थ होगा, वह स्वयं में स्थित होगा। वह अपने में खड़ा हो जाएगा। वह कहीं और में डूबा हुआ है, वह स्वयं में डूब जाएगा। ऐसा व्यक्ति समस्त कार्य करेगा क्योंकि वह जागरूक तो है, मूर्छित नहीं है। उसकी क्रियाएं पूर्ण कुशल होंगी क्योंकि वह किसी भी कार्य को परिपूर्ण जागरूकता से करेगा। लेकिन साथ-साथ एक अदभुत बात होगी। प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक क्रिया को करते हुए भी अपने से च्युत नहीं होगा, अपने से डिगेगा नहीं, अपने में खड़ा रहेगा, सुस्थित होगा। ऐसे व्यक्ति को गीता ने स्थित प्रज्ञा कहा है। जिसकी प्रज्ञा बिलकुल स्थित हो गयी है--शब्द बड़ा बढ़िया उन्होंने चुना है। जिसकी प्रज्ञा अपने में बिलकुल ठहर गयी है जिसका ज्ञान बिलकुल अपने में ठहर गया है।

तो ज्ञान हमारे स्वयं में ठहर जाए, उसके लिए शून्यता का और जागरूकता का प्रयोग है। शून्यता और जागरूकता में पहले भेद नहीं है। जागरूकता प्रक्रिया है परिणाम शून्यता है। जागरूकता होने का हम प्रयोग करेंगे, परिणाम में शून्यता उपलब्ध होगी। पहले वह निष्क्रिय होगी, फिर उसे सक्रिय करना होगा। और जब वह अखंड चौबीस घंटे जो जाए तो ऐसा

आदमी संन्यास में है। वह कहां रहता है इससे मेरे लिए कोई संबंध नहीं है। वह कैसे रहता है इससे कोई संबंध नहीं है।

प्रश्न--क्या सुबह आधा घंटा करना अच्छा रहना?

उत्तर--बहुत अच्छा है रात्रि को, जब शांति हो जाए, उस वक्त आधा घंटा बैठकर प्रयोग करना; और अगर नहीं तो सुबह अच्छा है। अगर उस वक्त थक जाते हो ज्यादा दिन भर के काम काज के बाद और बैठा रहना या आधा घंटा प्रयोग करना संभव न हो तो फिर सुबह जब उठें तो बिस्तर पर ही बैठ जाए, उस वक्त आधा घंटा करें। या जो आपको ठीक लगे।

प्रश्न--किसी खास स्थिति में बैठें या आराम से?

उत्तर--नहीं नहीं, जितने आराम से बैठे उतना। कोई स्थिति की बात नहीं। आराम भी महत्वपूर्ण है। यानी अन्य किसी चीज को महत्व देने की जरूरत नहीं है, महत्व उसी प्रक्रिया को देने का है जो आपको सहज मालूम हो। लेट कर सुखद मालूम हो लेटकर बैठ सकते हैं। क्यों चाहे आप लेटें और चाहे आप बैठे और चाहे आप खड़े हों, आत्मा एक ही स्थिति में हैं। आपके लेटने, उठने, बैठने से कोई अंतर नहीं पड़ने वाला है। बस वह इतना उपयोग है कि आपकी स्थिति शरीर की ऐसी हो कि वही एक अड़चन का कारण बने। इतना ध्यान रखकर कभी भी उस प्रयोग को करें। थोड़े ही दिन में बहुत अदभुत अनुभव होंगे।

प्रश्न--अगर कोई विचार में दिक्कत आयी तो?

उत्तर--नहीं उसमें कोई दिक्कत नहीं है। प्रयोग ही न करें, वही एक दिक्कत है। मेरे देखने में, जानने में एक ही दिक्कत है कि प्रयोग ही न करें। बाकी कोई दिक्कत नहीं है।

प्रश्न--अगर विचार आए तो उसे हटा दे?

उत्तर--हटाएंगे कैसे आप? हमको यही कठिनाई है। जो इस जगत में सारे लोगों को दिक्कत है, निर्विचार होना समझ में आ जाता है, पर वह हमको भाव यह लगता है कि निर्विचार का मतलब हटा देना। इटाइएगा। कैसे? हटाना नहीं है, जागरूक होना है। विचार आया, उसको देखना, उसके द्रष्टा मात्र रह जाना। आने दे, हटाने का भाव ही छोड़े। हटाना भी उसमें उलझ जाना है। न हटाना है, न कुछ।

बुद्ध के जीवन में एक उल्लेख है, शायद पिछली बार उसकी चर्चा किया था। वह एक जंगल से गुजरते थे। उनका एक भिक्षु आनंद उनके साथ था। वह एक वृक्ष के नीचे रुक गए। उन्हें प्यास लगी और उन्होंने आनंद को कहा कि जाकर पास से पानी ले आ। तो आनंद बोला कि यह मार्ग मेरा परिचित है। आगे एक छोटा सा पहाड़ी नाला है फलांग दो फलांग पर, उस पर से पानी ले आऊं? और या फिर पीछे तीन मील लौटने से नदी है, जहां से हम होकर आए हैं, उससे पानी ले आऊं। बुद्ध ने कहा, उस नाले से ही पानी ले आ। वह नाले पर गया, लेकिन जब वह नाले पर पहुंचा तो उसके आगे ही पांच-सात बैलगाड़ियां उस नाले से निकल गयी है। वह एकदम गंदा और कचरे से भर गया है और सार पत्ते दबे हुए, सड़े हुए ऊपर फैल गए हैं। छोटा सा नाला था, वह पानी पीने योग्य नहीं है, ऐसा मानकर वह वापस लौट आया। फिर बुद्ध से कहा कि वह पानी तो पीने योग्य नहीं है, मैं वापस पीछे जाता हूं। बुद्ध

ने कहा, इस दोपहरी में पीछे मत जाओ तुम उसी पानी को ले आओ। बुद्ध की बात भी टाल नहीं सका, फिर वहीं गया लेकिन उसका फिर वहां साहस नहीं हुआ कि इस पानी को मैं कैसे ले जाऊं और उनके लिए पीने को पानी कैसे दूं? फिर वापस लौट। मुश्किल यह थी, बीच में वह उसी रास्ते में था, वह रुके थे। वह फिर वापस लौटा, उसने कहा, क्षमा करें, पानी लाने का साहस मेरा नहीं है।

बुद्ध ने कहा, तू मान उसी पानी को ले आ। वह बड़ी अड़चन में पड़ गया। वह जानता था, फिर उसे वापस लौटने का बहुत आग्रह किया। बुद्ध ने कहा, लाना हो तो उसी को ला, अन्यथा मत ला। उसे मजबूर होकर वहीं जाना पड़ा। वहां जाकर वह देखकर हैरान हुआ। वह तो पत्ते बह गए थे और कचरा नीचे बैठ गया था वह पानी को भर लाया, वह बड़ा हैरान हुआ। उसने जाकर बुद्ध को कहा कि बड़ा अदभुत अनुभव हुआ। वह पत्ते तो सब बह गए, कचरा नीचे बैठ गया, पानी तो बिलकुल निर्मल हो गया। बुद्ध ने कहा, मन को शांत करने का सूत्र भी यही है। तुम किनारे बैठ जाओ और जो विचार बहते हों बहने दो। जो विचार बैठ जाए बैठ जाने दो। तुम बिलकुल किनारे बैठे रहो, तुम छेड़छाड़ मत करो। और अगर तुम किनारे बैठे देख सकते हो तो तुम थोड़ी देर में पाओगे कि सब पत्ते बह गए और सब कचरा नीचे बैठ गया और अगर तुम कूद पड़े धारा में उसको शांत करने के लिए, फिर वह शांत होने को नहीं और दबे पत्ते उघड़ आएंगे शांत होना मुश्किल हो जाएगा।

चित्त के प्रति तटस्थ जागरूक होने का प्रयोग भर सार्थक है। कुछ करना नहीं है लेकिन हमारे सारे उपदेश सुनकर हमको ऐसा लगता है कि कुछ करना है। करना भ्रामक हो जाता है। कुछ करना नहीं है। और करने का भ्रम ही हमारा असली भ्रम है। असल में हम केवल द्रष्टा मात्र हैं, इसे हम केवल देख सकते हैं। और इसे हम केवल देखने का उपयोग कर लें थोड़ा सा तो हम अचानक पाएंगे कि चित्त तो गया, बह गया। पर वह हम हटाने में लग जाते हैं। हटाने में फिर कुछ रास्ता नहीं बनता। हटाने में आप उलझ जाते हैं। और जितने आप जोर से हाथ मारते हैं, उतने जोर से उलझ जाते हैं। और तब आप फिर पच्चीस एक्सप्लेनेशंस खोज लेते हैं कि अपने पुराने पाप कर्म होंगे, फलां होगा ढिकां होगा, इससे नहीं हो रहा हैं। ये सब पच्चीस बातें खोज लेते हैं। तो यह सब उस ना समझी को जा आप कर रहे हैं, छिपाने के उपाय से ज्यादा नहीं हैं। यह कोई एक्सप्लेनेशन माने के नहीं हैं। जैसे एक घड़ी को सुधारना न जानता हो और कोई आदमी सुधारने बैठ जाए तो सोचने लगे कि पुराने कर्मों का फल है। घड़ी तो बिगड़ी चली जाती है। अभी कर्मों का उदय नहीं कि घड़ी ठीक हो। और कुल बात इतनी है कि वह टेकनीक को नहीं समझ रहा है कि घड़ी ठीक हो जाएं।

ध्यान बिलकुल टेकनीक की बात है। कुछ करने की बात नहीं है समझ लेना की बात है देखें थोड़े दिन प्रयोग करके। अधैर्य हमारा इतना ज्यादा है कि हम प्रयोग नहीं कर पते। तो थोड़े रखें, बहुत अदभुत होगा।

प्रश्न--प्राणायाम क्या इसके लिए कुछ सहायक हो सकता है?

उत्तर--नहीं, मेरे मानने में तो कुछ सहायक नहीं है और इसीलिए मैं हरेक चीज को इनकार कर देता हूं कि वह सहारे अगर मैं थोड़े भी मैं कहूं तो आप थोड़े ही दिन में पाएंगे कि यह तो गौण हो गया है, वह सहार की ही आप फिकर कर रहे हैं और वही काम कर रहा है। कोई सहायक नहीं है। यानी निपट मैं, एक छोटी सी बात, बात ही आपकी दृष्टि में रखे रहना चाहता हूं। कोई भी दूसरी चीज को बीच में नहीं आने देना है। कोई सहायक नहीं है। और या तो फिर जीवन का हर काम सहायक है--खाने, पीने, सोने उठने, बैठने से लेकर सब। प्राणायाम स्वस्थ के लिए सहायक होता है। स्वास्थ्य के लिए उपयोगी होगा। पर वह भी बहुत सोच समझ कर करने जैसा है, नहीं तो अस्वास्थ्य लाने में उपयोगी हो जाता है।

जीवन और शरीर के बाबत तो मेरी धारणा यह है कि वह बहुत सहज, निसर्ग, जीने देना चाहिए। जितना सहज उसको निर्सगतः जीने दें जितना उसमें कुछ उल्टा सीधा न करें उतना अच्छा है। प्राणायाम का उतना मूल्य नहीं है जितना स्वच्छ वायु का शरीर में पहुंच जाने का मूल्य है। वह कभी घंटे भर के लिए खाली स्वच्छ स्थान पर बैठकर धीमे से गहरी श्वास ले लें तो शरीर को लाभ पहुंचाएगा। और श्वास की जो रिदम है वह मन को शांत करने मग सहयोगी हो जाती है। असल में सब रिदम शांत लाती है किसी तरह की रिदम हो, किसी तरह की गतिबद्धता हो वह शांति लाती है।

वहां बर्मा में या कुछ और मुल्कों में वह ध्यान के लिए अनिवार्य मानते हैं, श्वास में रिदम पैदा करना। आधा घंटे को बैठ जाए और श्वास के आने जाने को देखते रहे। श्वास भीतर गई तो स्मरणपूर्वक भीतर जाने दें, बाहर गयी तो स्मरण पूर्वक बाहर जाने दें। फिर भीतर गयी तो स्मरण पूर्वक। वह जागरूक का प्रयोग करें। तो उसमें दोहरे फायदे होंगे। श्वास थोड़ी देर में रिदम पकड़ लेगी। रिदम का परिणाम स्वाथ्य पर अच्छा होगा। और दूसरा, वह जो मैं जागरूकता कह रहा हूं वह श्वास के मध्यम से जागरूकता विकसित होने लगेगी। और वह जागरूकता जो श्वास के संबंध में विकसित हो गए, उसी जागरूकता का प्रयाग मन के संबंध में, विचार के संबंध में किया जा सकता है।

और सच तो यह है कि अगर आप श्वास के प्रति भी जागरूक हो जाए तो भी चित्त में विचार शून्य हो जाएंगे। श्वास और विचार बंधे हुए हैं। अगर पांच मिनट बैठकर आप श्वास को देखते रहे--श्वास प्रश्वास को, आप अचानक पाएंगे, मन शून्य हो गया आखिर है किसी भी चीज के प्रति जागरूकता का प्रयोग करें तो चित्त शून्य हो जाएगा। अगर एक हाथ को यहां तक ले जाएं और होश से देखते रहे तो आप पाएंगे कि चित्त शून्य हो गया। अगर आप रास्ते पर चलें और कदम-कदम पर जागरूकता रखें, बायां पैर उठा और नीचे गया, दायां पैर उठा और नीचे गया पूरा होश रखें तो आप एक पांच मिनट बाद पाएंगे कि आप चल रहे हैं और चित्त शून्य हो गया है। जहां भी जागरूकता का प्रयोग कर लें, वह चित्त शून्य होगा। मूर्च्छा चित्त है जागरूकता चित्त शून्यता है।

सहयोगी किसी बात को न मानें। नहीं तो धीरे-धीरे धर्म के अदभुत परिणाम हो गए हैं जगत में, वे सहयोगी बातें बताने की वजह से हो गए हैं। और तब धीरे-धीरे ऐसा होता है कि वह

सहयोगी बातें हमारे लिए इतनी महत्वपूर्ण हो जाती है। तो मैंने बिलकुल नियमित रूप से उनकी बात करना बंद कर दी है। थोड़ा बहुत सहयोग जरूर मिल सकता है। बाकी मैं उसकी बात बंद किया है। नहीं तो लोग मुझसे पूछते हैं, आहार कौन सा सहयोगी होगा? कपड़े कौन से सहयोगी होंगे? जरूर कुछ सहयोग हो सकता है। लेकिन अगर उनकी बातें इतनी की गयी है कि कुछ लोग जो जिंदगी भर आहार ठीक करने में व्यय कर देते हैं। कुछ लोग हैं जो जिंदगी में कपड़े कैसे पहनना है, इसमें व्यय कर देते हैं।

जब जैसे जैन हैं, इन्होंने चुकता पच्चीस सौ वर्ष आहार ठीक करने में व्यय किए। चुकता ढ़ाई हजार वर्ष का इनका इतिहास आहार शुद्धि का इतिहास है। उसने आत्मा-वात्मा का कोई संबंध नहीं रहा है। वह एक बहुत गौ बिंदु था जिससे थोड़ा सहयोग मिल कसता था। लेकिन वह इतना ज्यादा आउट आफ प्रपोर्शन महत्वपूर्ण हो गया कि वह किसने बनाया और कैसे बनाया और किसने छुआ और किसने नहीं छुआ, वह इतनी महत्वपूर्ण बात हो गयी कि हमारा साधु करीब-करीब अपने जीवन का अधिकतम हिस्सा खाने की शोध में व्यय करता है, आत्मा की शोध में नहीं। वह सारे अनुपात से ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया। वैसा ही प्राणायाम और दूसरी चीजें--जो कुछ संप्रदायों में अतिशय महत्वपूर्ण हो गयी और तब यह हो गया कि कुछ साधु बेचारे दिन रात व्यायाम करने में व्यर्थ करते हैं, आत्मा की शोध में नहीं। और हमारा चित्त इतना ज्यादा डिसेप्टिव है, इतना ज्यादा वंचक है कि अगर उसे कोई भी चीज पकड़ा दी जाए तो वह मूल पर जाने की बजाए--वह तो जाना नहीं चाहता, मूल पर जाने में उसकी मृत्यु है। जो हमारा माइंड है, वह पूरा बचना चाहता है कि कहीं ध्यान में न चला जाए। तो कोई भी बचने का उसको अगर थोड़ा रास्ता मिल जाए, मूल से हटने का, तो तत्काल उसको पकड़ लेता है। सोचता है, पहले इसको पूरा कर लूं तब तो असली बात करेंगे। और जब यह पूरी कभी होंगी नहीं, असली बात होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठेगा। इसलिए मैंने सख्ती से यह तय किया कि कोई सहयोगी नहीं। बात इतनी ही करनी तो इतनी ही बात करनी है। इतना जरूर मेरा अनुभव कि अगर इसका प्रयोग जारी किया तो जो चीजें सहयोगी हैं, धीरे-धीरे वे अपने आप आती जाएंगी। अगर इसका ठीक से प्रयोग किया तो थोड़े दिन में आपको पता चलेगा कि कि श्वास लेने का आपका ढंग बदल गया। थोड़े दिन में आपको पता चलेगा, आपका सोने का ढंग बदल गया। थोड़े दिन में आपको पता चलेगा, आपके भोजन का ढंग बदल गया। यह आपको अचानक पता चलेगा क्योंकि चित्त जैसे शांत होगा चित्त की अशांति में जो जो चीजें संबंधित थीं, वे विलीन होने लगी।

जैसे हमारे चित्त की अशांति से हमारा आहार संबंधित है। जितना चित्त अशांति है उतना मादक, उत्तेजक आहार प्रिय होता है। हम सोचते हैं, यह प्रिय होना कोई गलती की बात नहीं है। इसमें चित्त की अशांति के साथ मादक और उत्तेजक आहार प्रिय होगा। और अगर चित्त को बिना बदले कोई आहार को बदलेगा तो बड़ा त्याग मालूम पड़ेगा कि भारी कष्ट कर रहे हैं, बड़ा त्याग कर रहे हैं। लेकिन अगर चित्त शांत हो जाए, आहार में एकदम परिवर्तन हो जाए, अपने से परिवर्तन हो जाएगा।

एक महिला मेरे पास, एक बंगाली महिला अभी आती रही, अविवाहित है। वह जो उनकी मां ने आकर बताया कि हमारे बंगालियों में अविवाहित लड़की मांस मछली छोड़े तो अपशगुन समझते हैं। असल में विधवा मांस मछली छोड़ देती हैं इसलिए। उन्होंने आकर मुझसे कहा कि इसने मांस मछली खाना छोड़ दिया तो हमको तो बड़ी परेशानी हो गयी, समाज में बड़ी बदनामी हो गयी। तो आपसे हम प्रार्थना करने आए हैं कि इसको कह दें कि यह खाए। तो मैंने उससे कहा, मैंने तो कभी उसको रोका नहीं कि वह न खाए। इसलिए मैं कोई कहने वाला नहीं हूं कि वह खाए। वह ध्यान करने आती है। ध्यान का यह परिणाम होगा। उस लड़की को मैंने पूछा कि तुमने यह बंद क्या किया? उसने कहा कि बंद करने का कोई सवाल नहीं है। मुझे आश्चर्य है कि मैं इतने दिनों तक खायी कैसे? जैसे-जैसे मन शांत हुआ है वह मुझे बिलकुल फिजूल सी लगने लगी। इसको कैसे खाऊं, यह सवाल है। इसको खाना नहीं खाने का तो प्रश्न ही नहीं है। सभी भीड़ को घटनाएं घटी जिन लोगों ने ध्यान का थोड़ा सा प्रयोग किया उनके आचरण में व्यवहार में, पच्चीसों बातों में अंतर पड़ना शुरू हो गया। हमारी श्वास जो है, चित्त की अशांति के कारण बार-बार गैर रिदमिक हो जाती है। अनुभव किया होगा, क्रोध में श्वास रिदम टूट जाएगा। तीव्र कामवासना में श्वास का रिदम टूट जाएगा। किसी भी उत्तेजना में श्वास का रिदम टूट जाएगा। श्वास कंपती हुई, झटके से लंबी और छोटी चलने लगेगी। उसमें जो गतिबद्धता है लयबद्धता है वह विलीन हो जाएगी। वह डिसहार्मोनियस हो जाएगी। तो चौबीस घंटे में हम इतनी बार उत्तेजित होते हैं कि श्वास कई बार डिसहार्मोनियम होकर शरीर को नुकसान पहुंचाती है। उसके प्रतिकार के रूप में प्राणायाम है कि श्वास को हम लयबद्धता दे दें।

नहीं, इस बीमारी के लिए वह प्रतिकार है। चित्त शांत हो जाए तो यह बीमारी नहीं होती। उसके प्रणाम करने का कोई सवाल नहीं उठता। बीमार होते हैं इसलिए स्वास्थ्य के लिए औषधि लेनी पड़ती है और अगर हम स्वस्थ हो जाएं तो औषधि व्यर्थ हो जाती है। मूल बात को ही पकड़ें ध्यान में और उसके ही प्रयोग को जारी रखें। धीरे-धीरे जो गौण हैं वे अपने आप बीतने लगेंगे और जो सहयोगी हैं वे दिखायी पड़ने लगेंगे, और उनका काम शुरू हो जाएगा। और जो सहयोगी हों उन पर पहले चिंतन करेगा, वह उन पर नहीं पहुंच पाएगा।

तो मेरी पूरी एंफेसिस जो है, जानकर ही आपको कोई और सहयोग की बात नहीं करता। लेकिन वह उतना बड़ा प्रपंच है सहयोग का कि वह उसके धुएं में मूल बात कहां खो जाएगी, पता नहीं। इतने ग्रंथ हैं, मैं तो हैरान हो गया हूं। जैन दर्शन पर सैकड़ों अभी किताबें लिखी गयी हैं, उनमें ध्यान पर एक अध्याय भी है? मैं हैरान हो गया कि दर्शन और धर्म पर लिखी गयी किताबें हैं, उनमें ध्यान का एक अध्याय नहीं। ऐसी किताबें मैंने देखीं कि हजार पृष्ठ की किताब है और ध्यान पर दो पन्ने कहीं एक जगह लिखे हुए हैं। बाकी ये सब सहायक हैं जिनका इतना विस्तार हो गया है, जिन पर इतना ज्यादा वाद-विवाद, इतना उपद्रव है और वह एक मौलिक बात है।

प्रश्न--ध्यान तपश्चर्या में कितनी सहयोगी है?

उत्तर--ध्यान ही तपश्चर्या है। आज मैंने सुबह या कल रात चर्चा भी किया। तपश्चर्या का हमको जो अर्थ पकड़ गया है, हमको मोटे अर्थ बहुत जल्दी पकड़े जाते हैं। जैसे, अभी मैं वहां गया, वहां इस पर बात हो रही थी--महावीर के उपवास, महावीर की तपश्चर्या महावीर ने साढ़े बारह वर्ष तक तपश्चर्या की। हमको लगता है तपश्चर्या की और मुझको लगता है तपश्चर्या हुई। और की और हुई में मैं बहुत फर्क कर लेता हूं।

एक साधु मेरे पास थे। वह मुझसे कहे कि मैं बड़े उपवास करता हूं। मैंने कहा, तुम जब तक उपवास करते हो, तब तक तपश्चर्या नहीं है। जब उपवास हो तब वह तपश्चर्या है। बोले, उपवास कैसे होगा? हम नहीं करेंगे तो होगा कैसे? हम करेंगे तभी तो होगा! मैंने उनसे कहा कि तुम ध्यान का थोड़ा प्रयोग करो तो अचानक कभी-कभी पाओगे कि उपवास हो गया। फिर बाद में, छह महीने बाद में वे मेरे पास गाए--हिंदू साधु थे--और उन्होंने कहा, जिंदगी मग पहली दफा एक उपवास हुआ। मैं सुबह पांच बजे उठकर ध्यान करने बैठा, उस वक्त अंधेरा था। जब मैंने वापस आंख खोली तो मैं समझा, अभी सुबह नहीं हुआ क्या? पूछने पर पता चला, रात हो गयी है। पूरा दिन बीत गया, मुझे तो समय का पता है, न किसी और बात का। उस दिन भोजन नहीं हुआ। उन्होंने मुझे आकर कहा, एक उपवास मेरा हुआ।

इसको मैं उपवास कहता हूं। हम जो करते हैं, वह अनाहार है, उपवास नहीं है। वह भोजन न करना है। यह उपवास है। उपवास का अर्थ है, उसके निकट वास। वह आत्मा के निकट वास है। उस वास में भोजन का स्मरण नहीं आएगा। तो, वह तो हुआ उपवास। और एक है अनाहार कि तुम खाना न खाएं। उसमें भोजन भोजन का ही स्मरण आएगा। वह तपश्चर्या की हुई, यह तपश्चर्या अपने से हुई। महावीर ने तपश्चर्या की नहीं, यह बात ही भ्रांत है। या कोई कभी तपश्चर्या करता है? सिर्फ अज्ञानी तपश्चर्या करते हैं। ज्ञानियों से तपश्चर्या होती है।

होने का अर्थ यह है कि उनका जीवन, उनकी पूरी चेतना कहीं ऐसी जगह लगी हुई है जहां बहुत सी बातों का हमें खयाल आता है, वह उन्हें नहीं आता। हम सोचते हैं कि वे त्याग कर रहे हैं और उनके कई बात यह है कि उनको स्मरण भी नहीं आ रहा। हम सोचते हैं उन्होंने बड़ी बहुमूल्य चीजें छोड़ दी। हम सोचते हैं, उन्होंने बड़ा कष्ट सहा। और वह हमारा मूल्यांकन में, भेद असल मग वैल्युएशन में हमारे और उनके अलग हैं। जिस चीज को महावीर सार्थक समझते हैं, हम उसे व्यर्थ समझते हैं। जिसको वे व्यर्थ समझते हैं, हम सार्थक सकते हैं। तो तब हम उनको हमारी दृष्टि से सार्थक को छोड़ते देखते हैं तो हम सोचते हैं, कितना कष्ट झेल रहे हैं, कितनी तपश्चर्या कर रहे हैं! और उनकी कई स्थिति बिलकुल दूसरी है। जो व्यर्थ है वह छूटता चला जा रहा है।

महावीर ने घर छोड़ा--हां वह बिलकुल सहज छूट रहा है। तपश्चर्या करनी नहीं है, केवल ज्ञान को जगाना है। जो जो व्यर्थ है वह छूटता चला जाएगा। और दूसरों को देखेगा कि आप तपश्चर्या कर रहे हैं और आपका दिखेगा कि आप निरंतर ज्यादा आनंद को उपलब्ध होते चले जा हरे हैं। दूसरों को दिखेगा, बड़ा कष्ट सह रहे हैं और आपको दिखेगा हम तो बड़े आनंद को उपलब्ध होते चले जा रहे हैं। धीरे-धीरे आपको दिखेगा, मैं तो आनंद को उपलब्ध हो रहा

हूं, दूसरे लोग कष्ट भोग रहे हैं। और दूसरों को यही दिखेगा कि आप कष्ट उठा रहे हैं और वे आपके पैर छूने आएंगे और नमस्कार करने आएंगे कि आप बड़ा भारी कार्य कर रहे हैं। तपश्चर्या दूसरों को दिखाती है, स्वयं को केवल आनंद है। और अगर स्वयं को तपश्चर्या दिखती है तो अज्ञान है, और कुछ नहीं है। वह पागलपन कर रहा है और अगर उसको स्वयं को दिखता है कि मैं बड़ा तप कर रहा हूं और बड़ी तपश्चर्या और बड़ी कठिनाई तो वह बिलकुल पागल है, वह नाहक परेशान हो रहा है। और उसमें केवल उसका दंभ विकसित होगा, आत्मज्ञान उपलब्ध नहीं होगा।

जो तपश्चर्या करता है यह दंभी है, वह अहंकारी है और वह अहंकार का पोषण करता है। जब वह सुनता है, उसने तीस उपवास किए और चारों तरफ लोग फूल मालाएं लिए खड़े हैं। तो जो सुख मिल रहा है वह इन फूलमालाओं का और इन लोगों का आदर का और सम्मान का है, तपस्वी कहलाने का है। और जिसमें सच तपश्चर्या हुई हो उसे पता भी नहीं पड़ता है। आप उसका सम्मान करने जाएं तो उसे सिर्फ हैरानी भर होती है कि आपको क्या हो गया है। उसे तपश्चर्या का बोध नहीं होता है।

तो मेरी दृष्टि में तो एक ही तपश्चर्या है और वह तपश्चर्या यह है कि जागरूकता को पैदा करें, मूर्च्छा को तोड़ें, चित्त की विकार विकल्प की स्थिति को विसर्जित करें, निर्विकल्प समाधि को उत्पन्न करें। और उसे परिणाम में जो जो परिवर्तन होंगे वे दूसरों को दिखायी पड़ेंगे कि तपश्चर्या हो रही है। अब जैसे महावीर का उल्लेख है। महावीर को लोगों ने मारा, ठोंका, पीटा, उनको कष्ट दिए। हमको लगता है, यह आदमी कितना सहा है, कितना तपस्वी था,। लोग मार रहे हैं। और वह सह रहे हैं। हमको ऐसा लगता है क्योंकि महावीर की जगह हम अपने को रखकर सोचते हैं। अगर लोग हमको मार रहे हैं और हमको उन्हें न मारना पड़े तो कितना कष्ट होगा, कितनी तपश्चर्या होगी। और जहां तक महावीर का संबंध है, उन्हें केवल यही हैरानी हो रही होगी कि इन विचारों को कैसी पीड़ा है कि ये मारने को उतारू हो गए हैं।

एक साधु थे उत्तर प्रदेश में। उनको अनेक लोग मानते थे, बड़े-बड़े राजा महाराजा उनकी सेवा में जाते थे। किसी राजा ने बहुत से स्वर्ण-पात्र उनको भेंट कर दिए थे। देवहरवा बाबा उनका नाम था पूरा का पूरा एक बड़ा बोरा भर कर भेज दिया। तो वहां तो झोपड़े में सांकल भी लगाने को नहीं थी। रात को एक चोर उसको उठाकर ले गया। तो देवहरवा बाबा नंगे पड़े रहते थे उस झोपड़े में। उन्होंने अंधेरे में देखा कि कोई उठाने आया है तो उनको आंसू आ गए कि बेचारा इतनी रात आया, जरूर तकलीफ में होगा। वह पहली बात उनको जो खयाल में आयी, इतनी रात आया। अरे दिन में आ जाता! जरूर ज्यादा तकलीफ में होगा, नहीं तो कौन इतनी रात, ठंडी रात और इधर आना इसकी परेशानी, इस पहाड़ी को पार करना, पहाड़ी में आना! अंधेरे में डर भी लगा होगा, रास्ते में दिक्कत भी हो सकती है और यह बेचारा आया तो जरूर तकलीफ में है। वह बोरा था वजनी और वह आदमी था कमजोर। वह उसको उठाता था, पूरा उठता नहीं था। मोह था घना, छोड़ सकता था नहीं। तो उनको भारी कष्ट लगा कि यह बेचारा है कमजोर और बोरा है वजनी। उस राजा को मैं पहले ही कहा था

कि थोड़े ही भेंट कर, इतना क्या करेगा। आधे बोरे भेंट किए होते तो यह उसे बड़ी आसानी से ले जाता। और इस मूर्ख को यह भी पता नहीं कि अपनी ताकत से ज्यादा काम नहीं करना। दुबारा आ जाना इतना क्या जल्दी है! उनको यह भी लगा कि इसको मैं उठाकर सहारा दे दूं। मगर यह कहीं चौंक न जाए, भाग न जाए इसलिए दिक्कत है। और किसी के काम में आपने को बाधा नहीं बनाना है, यह भी खयाल था। फिर भर जब उनसे नहीं सहा गया तो वे उठे, वह उसको पीछे से उठा रहा था। ऊपर से उन्होंने हाथ लगाया। उसको दरवाजे के बाहर पहुंचाया। बाहर जाकर कहा, भैया इससे आगे मैं नहीं जा सकता। अब तू ले जा लेकिन एक बात भर स्मरण रख बोरा गिर पड़ा, जब उसने आवाज सुनी। अब वह हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। उसने कहा, एक बात भर स्मरण रख। हमेशा अपनी ताकत के हिसाब से काम करना। बोरा बड़ा है, ताकत तेरी कम है। थोड़ा दूध मलाई खा, ताकतवर बन, तब बड़े बोरे उठाया कर। अभी छोटे बारे उठाना। वह तो पैर पर गिर पड़ा वह तो बोरा चोरी नहीं गया। वह तो उनका भक्त हो गया। लेकिन वह घटना बड़ी महत्वपूर्ण है। उस आदमी को कैसा दिखेगा, उसका मूल्यांकन भिन्न है। जिन लोगों ने महावीर को जाकर मारा होगा उनको क्या दिखा होगा? उनको दिखा होगा, ये बड़े उद्विग्न हैं, बड़े परेशान हैं, नहीं तो मुझे काहे को मारने आते। परेशानी है इसके भीतर कुछ, जो इनके मारने में प्रकट हो रही है। सिर्फ इस वजह से दया और करुणा भर आयी होगी। इस वजह से कोई दूसरा प्रश्न नहीं उठता। हमको लगता है, उन्होंने बड़ा कष्ट सहा। उनको लगा होगा, यह जो मारने आए, बड़े कष्ट में हैं।

यह तप का, कष्ट का और पीड़ा का और सहने का ये सारे शब्द.गलत है। मनुष्य को जो आनंदपूर्ण है उसके अनुसार व्यवहार करता है। हमको जो आनंदपूर्ण है हम उसको मानकर व्यवहार करते हैं। उनको जो आनंदपूर्ण है उसको मानकर व्यवहार करते हैं। और दोनों के आनंद के दृष्टि में जमीन आसमान का अंतर है। इसलिए जो हमको तप है, वह उनको आनंद है। और जो हमारे आनंद है, उनके लिए अज्ञान है। वह हम पर दया से भरे हुए हैं कि हम मूर्ख हैं, हम किन चीजों में अपने समय को खो रहे हैं। और हम उनके ऊपर श्रद्धा से भरे हुए है कि कितने महान हैं कि बड़ा त्याग कर रहे हैं।

प्रश्न--वह तो समझता है कि मैं तपश्चर्या कर रहा हूं, बड़ा अच्छा कर रहा हूं।

उत्तर--वह भी अगर थोड़ी सी समझ का उपयोग करे तो उसे दिखायी पड़ेगा कि तपश्चर्या से अहंकार मजबूत हो रहा है या ज्ञान उत्पन्न हो रहा है। इसमें देर न लगेगी। और उसके समस्त व्यवहार में वह दिख जाएगा। साधु जितने अहंकारी हैं इस जगत में--मुश्किल से एकाध प्रतिशत को छोड़कर जो वस्तुतः साधु हैं--उतना दूसरा आदमी नहीं मिलेगा। वह आसपास के लोगों को भी दिखता है, उनको भी दिखाता है कि वह मौजूद है। लेकिन पच्चीस व्याख्याएं करके उनके समझाएंगे।

मैं अभी एक इलाहाबाद में एक बड़ा यज्ञ था, वहां गया। वहां उन्होंने संप्रदायों के साधुओं को बुलाया हुआ था। उन्होंने इतना बड़ा मंच बनाया था कि उस पर सौ साधु इकट्ठे बैठे सकें।

उन्होंने लाख चेष्टा की, हाथ पैर जोड़े कि सारे साधु एक दफा बैठ जाएं मंच पर। दो साधु एक साथ बैठने को राजी नहीं हुए। क्योंकि कोई किसी से नीचे नहीं बैठ सकता था। दो शंकराचार्य मौजूद थे लेकिन दोनों बैठने को राजी नहीं हुए क्योंकि दोनों का सिंहासन एक दूसरे से ऊंचा होना चाहिए। आखिर उस सौ आदमियों के मंच पर सौ बोलने के मंच पर एक-एक आदमी को भाषण करवाना पड़ा। बाकी लोग सुन भी नहीं सके बैठकर। वह अपने शिविर में--बोला आदमी, अपने शिविर चला गया। दूसरा साधु बोला, उसे उसके शिविर में पहुंचा दिया। को दो साधु मंच पर इकट्ठे होकर नहीं बैठते हैं। हैरानी होगी कि मामला क्या है? अभी पूरे मुल्क में यह दिक्कत है। दो साधु मिल जाएं तो कौन किसको पहले नमस्कार करे, यह दिक्कत है। इसलिए दो साधु मिलना नहीं चाहते कि पहले कौन किसको नमस्कार करे? दो साधु इसलिए नहीं मिलना चाहते कि कौन किससे मिल जाए? आप उनसे मिलने गए थे या वह आपसे मिलने आए थे, यह बड़ा महत्वपूर्ण है।

हमें दिखता नहीं, अन्यथा जो तथाकथित साधु हैं, इस तरह वे कामों में लगा हुआ, वह इतने दंभ का पोषण करता है कि उसको कोई हिसाब नहीं है।

प्रश्न--अनंतकाल के बाद आप भी इस अवस्था में अभी आए--यह अवस्था कैसे आयी।

उत्तर--यह सब बहुत महत्वपूर्ण नहीं है विचार करने के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण नहीं है कि हम कैसे आया और क्या हुआ! महत्वपूर्ण यह जानना है कि यह कैसे आ सकता है। दो ही बातें महत्वपूर्ण हैं। एक तो हम मौजूद हैं और दुख से भरे हैं, अज्ञान से भरे हैं। एक बात तो यह विचारणीय है कि हम दुख से, अज्ञान से भरे हैं। कितने जन्मों से आए या नहीं, यह सब तो हाइपोथीसिस हैं, हमारी मान्यताएं हैं। इनमें पच्चीस ढंग की मान्यताएं हैं। कोई मानता होगा। कि नहीं आए, कोई मानता है पहले ही जन्म है, कोई कहता है पचास जन्म है। इनसे कोई लेना देना नहीं है। महत्वपूर्ण मुद्दे के तथ्य इतने हैं, जिनमें कुछ सोचना नहीं पड़ेगा जो कि मौजूद हैं, जिनमें हमें कोई चीज परिकल्पना नहीं करनी पड़ेगी जो कि वर्तमान है! वर्तमान इतनी बात है कि मैं और आप मौजूद है और दुख से भरे हैं और जिस स्थिति में है उससे तृप्त नहीं है। यह एक तथ्य ऐसा है, जिसे किसी धार्मिक को विधि से सोचने की जरूरत नहीं है। वह वास्तविक तथ्य है। बाकी तो सब विस्तार है सोचने का। यह वास्तविक तथ्य है कि मैं दुख से भरा हुआ हूं। यह भी वास्तविक तथ्य है कि इस दुख से मैं सहमत नहीं हूं, ऊपर उठना कैसे हो सकता है? बाकी बातें मौन है और बाकी बातों का बहुत मूल्य नहीं है क्योंकि आप क्या करिएगा सोचकर भी? इससे क्या फर्क पड़ता है? यह थोड़ी सी बातें महत्वपूर्ण हैं। यानी हमारे बहुत चिंतन में से हमें उतनी थोड़ी सी बातें लेनी चाहिए। जो कि वस्तुतः महत्वपूर्ण हैं।

प्रश्न--तब कोई पकड़ भी नहीं थी। कोई पकड़ेगा और छह महीने बाद भी पकड़ेगा। कोई अभी शुरुआत करेगा, किसी की शुरुआत कल से हो जाएगी, किसी-किसी की नहीं भी होगी, इसके बारे में आपका क्या कहना है?

उत्तर--किसी के छह महीने बाद होगी, किसी के छह महीने बाद होगी। यह संसार आप नहीं रहेंगे, मैं नहीं रहूंगा, तब भी हरेगा। तब भी किसी की शुरुआत होती रहेंगी और नहीं होती रहेंगी।

--रहने देना है ऐसा, चिंतन नहीं करना।

--लेकिन मैं इसकी चिंता करके क्या करूंगा? मेरे किस उपयोग की होगी यह चिंता कि कौन छह महीने पीछे है, कौन छह महीने बाद? कौन हजार साल पहले कौन हजार साल बाद--मेरे किस उपयोग की होगी? नहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं शुरू न करूं, इसके लिए कोई उपाय और कोई बहाना खोज रहा हूं? बड़ा रहस्य यह है कि हम बहुत अच्छी बातों के पीछे भी सफेद बहाने खोज लेते हैं। जैसे मैं आज शुरू न करूं तो मैं सोचूंगा कि अभी उदय में नहीं आया। जब उदय में आएगा तभी तो होगा। अब मेरे वश में क्या है, अभी उदय में नहीं होगा। जिसके उदय में है वह अभी करेगा।जिसके उदय में छह महीने बाद है वह छह महीने बाद करेगा। कहीं यह उदय की धारणा केवल अपने न करने की स्थिति को छिपाने का उपाय न हो।

हमारी सामर्थय करने की, हम कर सकते हैं। अगर हम न कर सकते होते तो हममें यह आकांक्षा ही नहीं हो सकती थीं कि हम शांत हो जाएं। वह आकांक्षा कि शांत होना चाहिए, हम पुरुषार्थ के छिपे हुए रूप की सूचना है कि हम हो सकते हैं। यह आकांक्षा कि आनंद मिलना चाहिए उस सुप्त पुरुषार्थ की सूचना है कि आनंद मिल सकता है। नहीं तो यह प्यास नहीं हो सकती थी। यह आकांक्षा नहीं हो सकती थी। यह भीतर हमारे जो, निरंतर चाहे हम कुछ भी चाहे न करें, हमारे भीतर जरूर एक केंद्र पर यह आकांक्षा बनी ही है। यानी वह आकांक्षा सूचना है किसी सोए हुए पुरुषार्थ की। और अगर हम चेष्टा करें तो वह पुरुषार्थ जाग सकता है और यह आकांक्षा प्राप्ति में परिणत हो सकती है। वह हममें कहीं सोया हुआ है और उस सोए हुए के जगाने के बहुत उपाय हैं। धार्मिक लोगों ने किए हैं, लेकिन हम हर तरकीब को गलत कर देते हैं।

बुद्ध शुरू-शुरू में जब ज्ञान को उपलब्ध हुए तो वह काशी आए। वह काशी के बाहर एक वृक्ष के नीचे ठहरे अकेले थे उस वक्त; कोई भीड़ न थी, कोई संग न था, कोई जानने वाला न था। अभी उन्होंने किसी को उपदेश भी नहीं दिया था। लेकिन ज्ञान उन्हें उपलब्ध हुआ था कि और उसका प्रकीर्ण प्रकाश उनसे दिखाई भी पड़ने लगा था। अनुभव लोगों को होने लगा, कुछ हुआ है। काशी का नरेश संध्या को अपने रथ को लेकर नगर के बाहर निकला था। बहुत चिंतित था। कई भार थे उस पर राज्य के तो झांझ को भ्रमण के निकला था। सारथी से उसने बीच में एकदम कहा कि रोक दो, यह कौन मनुष्य वृक्ष के नीचे लेटा हुआ है? बुद्ध, सांझ को सूरज डूबता था, एक वृक्ष के नीचे बैठे थे। उसने कहा, रोक दो। यह कौन मनुष्य

वृक्ष के नीचे लेटा हुआ है इतना आनंद में, इतना शांत? और उसके पास कुछ दिखायी भी नहीं पड़ता है। थोड़ी देर मैं इससे मिलूं। वह उत्तर कर बुद्ध के पास गया और कहा, तुम्हारे पास कुछ भी दिखायी पड़ रहा है, फिर इतने शांत और निश्चिंत कैसे लेटे हो? मेरे पास तो सब कुछ है, लेकिन न निश्चितता है, न शांति है।

बुद्ध ने कहा, एक दिन तुम जिस स्थिति में हो, मैं भी था। और आज के दिन मैं जिस स्थिति में हूं, चाहो तो तुम अभी उस स्थिति में भी हो सकते हो। मैं दोनों स्थितियों से गुजर गया और तुम एक से गुजरे हो। और अगर मुझे देखो तो तुम्हारा पुरुषार्थ जाग सकता है। अगर तुम मुझे देखकर अपमानित हो जाओ तो तुम्हारा पुरुषार्थ जाग सकता है और तुम सिंह गर्जना कर सकते हो कि मैं भी होकर रहूंगा।

यानी मेरी धारणा में तो यही बात है कि महावीर, बुद्ध और ईसा, इनको देखकर अगर हम अपमानित हो जाएं तो पुरुषार्थ जाग जाए। लेकिन हम इतने होशियार हैं कि हम अपमानित नहीं होते, उल्टा उन्हीं का सम्मान करके घर चले आते हैं। उनके पैर में सिर झुका आते हैं। असलियत यह है कि उन्हें देखकर हमें अपमानित हो जाना चाहिए। कहीं हमारे भीतर यह आकांक्षा जग जानी चाहिए कि अगर इनको उपलब्ध हो सका तो...तो मैं? लेकिन इससे बचने के लिए कि हमारा पुरुषार्थ न जगे, हम कहेंगे कि वह भगवान हैं, वह तीर्थंकर हैं, वह अवतार हैं, उनको हो सकता है। हम साधारण जन हैं, हमको कैसे हो सकता है? तरकीबें हैं। यह हमारे हिसाब से हम बच जाएं तो उनको अवतार, उनको तीर्थंकर, उनको भगवान कहकर छुटकारा पाते हैं, कि हम साधारण जन, आप हैं भगवान, आप ठहरे विशिष्ट, आप कर सकते हैं, हम कैसे करेंगे? और एक बहुत बहुमूल्य पुरुषार्थ के जगाने का अवसर हम तीर्थंकर कहकर खो देते हैं।

उन्हें अति सामान्य मानने की जरूरत है--जैसा हम हैं, लेकिन उसमें उनको बहुत दुख होगा। उसमें हमें बहुत आत्मग्लानि होगी। अगर हम महावीर को भी अति सामान्य मानें कि वह भी ठीक हमारे जैसे हैं तो फिर हमें बहुत आत्मग्लानि होगी कि फिर हम क्या कर कहे हैं? वह मारे जैसे हैं, और इस स्थिति को पा सके, और हम क्या कर रहे हैं बैठे हुए? यह आत्मग्लानि न हो, इसलिए हम उनको कहते हैं, तुम तीर्थंकर हो, तुम भगवान हो और हम साधारण जन हैं। हम पूजा ही कर सकते हैं, हम कुछ और नहीं कर सकते।

यह सेल्फ डिसेप्टिव हमारा जो दिमाग है वह उसके खोजे हुए रास्ते हैं ये सारे तीर्थंकर के, अवतार के, भगवान के, फलां के, ढिकां के। सच बात यह है कि वे ठीक हमारे जैसे लोग हैं और फिर एक दिन अचानक हमारे जैसे नहीं रह जाते हैं। वह जो क्रांति उनमें घटित होती है, वह हममें भी घटित हो सकती है, अगर हम उनको सामान्य मान लें। और चेष्टा की; महावीर बुद्ध ने पूरी चेष्टा की कि उनको एक सामान्य आदमी आप मान लें। इसलिए ईश्वर से

इनकार किया, ईश्वर के अवतार से इंकार किया। लेकिन हम बहुत होशियार हैं, हमने नये शब्द खोज लिए कि न सही अवतारख तीर्थंकर सही; न सही तीर्थंकर, बुद्ध सही, अगर हो भगवान, हम तुम्हें पूजेंगे।

पुरुषार्थ के जागरण का कुल अर्थ इतना ही है, कुछ हममें प्रसुप्त है, कोई एक शक्ति प्रसुप्त हैं हममें, जो अगर जाग सके, अगर हम उसे पुकार सकें तो वह शक्ति हमारे भीतर क्रांति घटित कर सकती है। न पुकार उसको तो चलता है जीवन, चलता चला जाता है। लेकिन एक्सप्लेशंस कोई खोजना मुझे रुचिकर नहीं हैं। वास्तविक तथ्यों को पकड़ ले कि ये तथ्य है हमारे सामने हम दुखी हैं, यह एक तथ्य है। पीछे जन्म था या नहीं, यह कोई तथ्य नहीं है। आगे जन्म होगा या नहीं, यह कोई तथ्य नहीं है। तथ्य यह है कि मैं दुखी हूं। और यह भी एक तथ्य है कि दुख के ऊपर उठने की मेरी आकांक्षा है। तब एक बात ही रह जाती है। दुखी हूं, दुख के ऊपर उठने की आकांक्षा है। फिर से ऊपर उठने का उपाय खोज लेंगे। इससे ज्यादा और कोई अर्थ नहीं है। और अर्थ फिर सब पांडित्य हैं। फिर बहुत शास्त्र हैं और उनको मजे से पढ़ा जा सकता है और उनका अध्ययन किया जा सकता है। और ढेर साधु हैं जो उनकी व्याख्याएं समझा सकते हैं। और वैसे चलता है, उससे कुछ होता नहीं है।

प्रश्न--अस्पष्ट

उत्तर--वह जो फर्क कर लेते हैं--मैं नहीं कह रहा अपनी बात--वह जो फर्क कर लेते हैं--केवल ज्ञान तो अनेकों को उपलब्ध हुआ है लेकिन केवल ज्ञान उपलब्ध होने पर जो तीर्थ का प्रवर्तन करते हैं, यानी जो सब धर्मों को वापस स्थापित करते हैं ताकि उसके मार्ग से और लोग भी केवल ज्ञान तक पहुंच सकें। केवल ज्ञान उपलब्ध करना--वे स्वयं मुक्त हो जाते हैं। केवल ज्ञान उपलब्ध करके तीर्थ प्रवर्तन करना, धर्म को पुनर्स्थापित करना है। ऐसे पुनर्स्थापित उनके हिसाब से चौबीस होते हैं। धर्म का पुनर्स्थापित करने वाले लोग हैं। एक तीर्थंकर स्थापना देकर, जब उसका एक वक्त होता है कि कुछ वर्ष बीतने पर वह धर्म फिर विलीन हो जाएगा, वह मार्ग फिर अवरुद्ध हो जाएगा, उसको जो पुनर्स्थापित कर देगा वह केवल ज्ञानी तीर्थंकर है। फिर उन्होंने पच्चीस एक्सप्लेनेशस खोजे हुए हैं कि पिछले जन्म में तीर्थंकर होने का कर्मबंध करता है, फिर वह तीर्थंकर हो सकता है। जो ऐसा कर्म बंध नहीं करता वह तीर्थंकर नहीं होगा।

लेकिन मेरी यह धारणा नहीं है। मेरी धारणा तो यह है कि जो भी सदधर्म को उपलब्ध होता है और सदधर्म के संबंध में बोलता है वह तीर्थंकर है--मेरी बात कह रहा हूं, मैं जो भी सदधर्म को उपलब्ध होता है--और अगर नहीं बोलता उसके संबंध में तो तीर्थंकर नहीं है, केवल सदधर्म को उपलब्ध है, केवल ध्यानी है। और यह जो बोलना और न बोलना है--मेरी दृष्टि में इस भांति सोचने पर लाखों तीर्थंकर हैं, जैसा हमेशा हुए हैं, हमेशा होंगे। और उसमें उन सबको गिन लेता हूं जो कभी भी, जिसने कभी भी स्वयं सत्य को उपलब्ध होकर सत्य के संबंध में किसी को भी कुछ कहा हो। उस दिशा की तरफ कोई भी इंगित किया हो, चाहे एक को किया हो तो भी वह तीर्थ का प्रवर्तनकर्ता है।

यह भी करना नहीं है उसकी तरफ से कुछ। जैसे यह उपलब्ध होता है, वैसे ही बहुत तेज सहज प्रेरणा, बहुत सहज भाव से उस अनुमति को दूसरों से कहने की उसको हो जाती है। इसमें कोई चेष्टित नहीं है कि वह कोई जाकर और चेष्टा करके और विचार करके, योजना करके किसी को कहता हो। यह लगभग ऐसा ही है कि अगर मेरे हृदय में परिपूर्ण प्रेम भर गया है, अगर सतत चौबीस घंटे मेरी चेतना प्रेम से भर गयी है तो मेरे तई जो भी आएगा, उसे मैं प्रेम के सिवाय दे नहीं सकूंगा।

एक राबिया नाम की मुसलमान फकीर स्त्री हुई है। कुरान में कहीं एक वचन है शैतान को घृणा करने के संबंध में। राबिया ने वह वचन काट दिया। कुरान में किसी तरह का संशोधन करना बहुत कुफ्र की, बहुत पाप की बात है। और यह तो हद्द पाप की बात थी कि उसमें किसी वचन को कोई काट ही दे। एक बायजीद नाम फकीर उसके घर ठहरा था। उसने सुबह-सुबह कुरान पढ़ने को मांगी। यह देखकर कि वचन कटा हुआ है बहुत हैरान हुआ। उसने कहा, यह तरमीम सुधार किसीने किया है इसमें? यह कौन नासमझ है जो कुरान में भी सुधार करता है? राबिया ने कहा मैंने खुद ही किया है। बायजीद तो दंग हो गया। उसने कहा, पागल हो? राबिया ने कहा, जब से मेरा हृदय शांत हुआ उसमें घृणा है ही नहीं तो अब मैं शैतान को घृणा कैसे करूं? शैतान भी मेरे सामने खड़ा हो जाए तो मैं जितना प्रेम ईश्वर को कर सकती हूं उतना ही उसको कर सकती हूं। क्योंकि वह मेरे भीतर रहा नहीं। अब मैं प्रेम और घृणा करती नहीं। मैं प्रेम से भर गयी हूं तो प्रेम ही होता है। जो ज्ञान से भर गया है, उसे सहज ज्ञान प्रकीर्ण होगा।

हम भी अज्ञान को प्रकीर्ण करते हैं। अगर हम इसको समझ लें तो हम ज्ञानी के ज्ञान को प्रकीर्ण करने को समझ लें हमको पता न भी हो कि आत्मा क्या है, तो भी हम बताने को जरूर किसी को मिल जाएंगे। और उसको बताएंगे कि आत्मा यह है और धर्म यह है। हम अज्ञान को प्रकीर्ण करते है, अज्ञान को फैलाते हैं। वैसे ही एक स्थिति ज्ञान की है जब व्यक्ति उपलब्ध हो जाता है तो सहज--जैसे हम अज्ञान को फैलाते रहते हैं वैसे हम ज्ञान को फैलाने लगते हैं। उसमें कोई चेष्टित नहीं है। जगत में जितने लोगों ने भी धर्म को उपलब्ध करके उसके संबंध में किसी को भी इशारा किया हो वे सारे लोग मेरे लिए तीर्थंकर हो जाते हैं। यह भी अपनी बात कह रहा हूं। परंपरागत जैसा जैन सोचते हैं, उनका हिसाब वैसा है।

प्रश्न--ज्ञान क्या है?

उत्तर--उसकी ही बात करता हूं। मैं जो पूरी बात करता हूं। मेरे लिए तो दो स्थितियां हैं हमारी। ज्ञान की एक स्थिति वह है जो हम कुछ जानते हैं। जैसे मैं ज्ञान, इस वस्तु को देख रहा हूं, ज्ञान से आपको देख रहा हूं। ज्ञान से जब किसी को जानता हूं। ज्ञान पूरे वक्त किसी न किसी को जान रहा है। यह ज्ञान की मिश्रित स्थिति है। इसमें ज्ञान भी है। ज्ञाता पीछे छिपा है और ज्ञेय सामने खड़ा हुआ है। मैं हूं जानने वाला, वह पीछे छिपा हुआ है। आप, जिसको मैं जान रहा हूं, मेरे समाने खड़े हैं और दोनों के बीच का जो संबंध है वह ज्ञान है।

तो मुझे दो बातों का पता चल रहा है--एक तो ज्ञेय का और ज्ञान का। ज्ञाता का पता नहीं चल रहा है। एक ज्ञान की स्थिति यह है। और एक ज्ञान की स्थिति वह है कि ज्ञेय तो कोई भी नहीं है। ज्ञान है और ज्ञाता का पता चल रहा है। ये तीन बिंदु हैं न! ज्ञेय है ज्ञान है और ज्ञाता है। हमें तो ज्ञेय का पता चलता है और ज्ञान का पता चलता है, ज्ञाता का पता नहीं चलता है। यह मिथ्या ज्ञान है। जो जान रहा है उसका तो पता नहीं चल रहा है, जो जाना जा रहा है उसका पता चल रहा है ज्ञेय न हो, ज्ञाता रह जाए और ज्ञान रह जाए तो यह सम्यक ज्ञान है। ज्ञाता का पूजा चल रहा है। और ज्ञान की क्षमता का पता चल रहा है, वह सम्यक ज्ञान है। मिथ्या ज्ञान से सम्यक ज्ञान पर परिवर्तन होगा। अगर ठीक से इस बात को समझें तो जब ज्ञेय पता नहीं चलेगा तो ज्ञात भी पता नहीं चलेगा क्योंकि वह अंतर्संबंधित था। ज्ञेय था इसलिए हम उसे ज्ञाता कहते थे। जब ज्ञेय कोई भी नहीं रहा तो उसे ज्ञाता भी नहीं कहेंगे। तब मात्र ज्ञान का अनुभव होगा। केवल मात्र ज्ञान है, इसको अनुभव होगा। उस केवल मात्र ज्ञान के अनुभव को केवल ज्ञान कहा है। केवल ज्ञान की शक्ति भर का बांध होगा। न कोई जान रहा है, न कोई जाना जा रहा है। केवल जानने की क्षमता का संपदन हो रहा है। केवल कांसेसनेस भर रह गयी। किसी चीज के प्रति कांसेस नहीं है, कोई कांसेस नहीं है, केवल प्योर कांसेसनेस रह गयी है।

यह प्यारे कांसेसनेस समाधि में भी अनुभव होगी। लेकिन समाधि में यह थोड़ी देर टिकेगी और विलीन हो जाएगी। अगर यह सतत चौबीस घंटे अनुभव लेने लगे तो केवल ज्ञान की जो प्राथमिक अनुभूतियां हैं वह समाधि मिलनी शुरू होगी।और जब समाधि पूरे चौबीस घंटे पर फैल जाएगी तो वह केवल ज्ञान हो जाएगा। ज्ञान मात्र का शेष रह जाना, ज्ञाता और ज्ञेय दोनों का मिट जाना है।

अभी हमको एकदम से दिक्कत होगी, वह ज्ञान मात्र कैसा रह जाएगा? क्योंकि अभी तो हम जब भी जानते हैं ज्ञान को, तब किसी को जान रहे हैं। अभी मैं केवल कह सकता हूं। लेकिन अगर ध्यान का प्रयोग चले तो किसी दिन समाधि में लगेगा कि अकेला मैं ही रह गया था, केवल ज्ञान मात्र रह गया था। न कोई जान रहा था, न कोई जाना गया था, केवल ज्ञान मात्र रह गया था। न कोई जान रहा था, न कोई जाना जा रहा था, केवल ज्ञान था। केवल एक कांसेसनेस भर रह गई थी। उस वक्त पहला अनुभव मालूम होगा, जो कि सूचना देगा कि मात्र ज्ञान के अकेले रह जाने का क्या अर्थ होगा।

कुछ बातें ऐसी हैं कि शब्द तभी उनको बता पाते हैं जब साथ में अनुभूति भी हो। और सच तो यह है कि हमारे सामान्य जीवन के भी शब्द जब अनुभूति हो तभी कुछ बता पाते हैं। जैसा मैंने कहा, किवाड़--तो मेरा शब्द आपको कुछ सूचना दे पाता है क्योंकि आप भी किवाड़ को जानते हैं। अगर आप किवाड़ को नहीं जानते तो शब्द तो मेरा आपके कान में गूंजेगा लेकिन कोई अर्थ बोध नहीं होगा। शब्द अर्थ नहीं देता, अर्थ तो स्वयं की उसी वस्तु की सामान्य अनुभूति से आता है। मैंने कहा किवाड़ अगर आप भी किवाड़ से परिचित हैं, तो मेरा शब्द सार्थक हो जाएगा। और मैंने कहा किवाड़ और आप किवाड़ से परिचित नहीं हैं

तो किवाड़ केवल ध्वनि रह जाएगा, उसमें अर्थ नहीं होगा। तो सामान्य में शब्द तभी बोधपूर्ण होते हैं जब उनकी सामान्य अनुभूति होती है। धर्म के जीवन में दिक्कत है। वहां शब्द भी गूंजते रह जाते हैं। मैंने कहा, आत्मा--ध्वनि है, शब्द नहीं है यह। जब तक कि वहां भी अनुभूति न हो, तब तक यह केवल ध्वनि है। इससे कुछ बोध नहीं होता कि क्या! एक कान पर एक शब्द गूंजता है आत्मा, और विलीन हो जाता है। अर्थ तो इसमें तब आएगा जब थोड़ी सी अनुभूति भी दूसरी तरफ आएगी।

कबीर से एक मुसलमान फकीर फरीद मिला था। फरीद निकला था यात्रा को, कबीर उन दिनों मगहर काशी के पास रहते थे। वह करीब से निकला तो कबीर के भक्तों ने कहा कि ऐसा करें, फरीद को दो दिन रोक लें, आप दोनों में चर्चा होगी तो हमें बड़ा आनंद आएगा। फरीद बोला, तुम चाहो रोक लो, चाहो तो आनंद ले लेना, चर्चा शायद ही हो। समझे कि कबीर ने यों ही मजाक में कहा है। फरीद के भी शिष्य जो उसके साथ जा रहे थे उन्होंने कहा कि बड़ा भला हो, दो दिन कबीर का आश्रम पड़ेगा, वहां रुक जाएं। आपकी चर्चा होगी, हमको बड़ा आनंद होगा। उसने कहा कि तुम चाहो तो रुक जाओ, आनंद मिल जाए, लेकिन चर्चा शायद ही हो। उनके भक्त मिले तो दोनों ने कहा, ऐसा ऐसा कहा था। वे दोनों मिले, दोनों गले मिले, दोनों खूब हंसे, दोनों दो दिन रहे, लेकिन अदभुत कथा है कि दोनों कुछ बोले नहीं। दो दिन बाद कबीर विदा भी कर आए दोनों के बाहर, दोनों गले मिल लिए, लेकिन वह बातचीत हुई नहीं। दोनों के भक्त बहुत परेशान हुए और उन्होंने लौटकर पूछा, कि हम तो थक गए दो दिन राह देखकर। कुछ तो बोलते! कबीर ने कहा, बोलते क्या, जो वे जानते हैं, वह मैं जानता हूं। फरीद ने भी कहा, जो वे जानते हैं वह मैं जानता हूं। अनुभूति बिलकुल इनकी एक-सी है, बोलने को कुछ है नहीं।

यह धार्मिक जीवन की अदभुत बात है कि अगर अनुभूति बिलकुल एक सी हो जाए आत्म जीवन की, तो बोलने को कुछ नहीं रह जाता। और जब तक अनुभूति एक सी नहीं है तब तक जो बोला जाता है, वह कोई अर्थ नहीं लेता। तब तक बोला जा सकता है, लेकिन अर्थ नहीं होता। और जब अनुभूति एक सी हो जाए, बोलने को कुछ नहीं रह जाता, तब अर्थ मिल सकता है। अब जैसे हम कहें, केवल ज्ञान। तो कुछ समझाया जा सकता है, लेकिन समझाने से कुछ बोध होगा बहुत, यह नहीं पकड़ में आता। इसलिए हमको अक्सर लगता है कि तृप्ति तो नहीं हुई उस बात को सुनने में। तृप्ति नहीं होगी। तृप्ति तो उस दिन होगी जब थोड़ी सी झलक उस बात की मिल जाए, जब केवल ज्ञान मात्र रह गया।

तो मैंने यह अनुभव किया--धीरे-धीरे मैंने यह कहना भी शुरू किया कि ग्रंथ जो धर्म के हैं वह साधना के बाद पढ़े, तो उनमें कुछ आनंद जाएगा। साधना के पूर्व पढ़ने में कोई आनंद उपलब्ध नहीं होगा। थोड़ी साधना हो तो कई शब्द इतने अर्थपूर्ण है कि साधना उनके अर्थ को खोल देगी। तब एक-एक शब्द आपकी अनुभूति को खोलता हुआ मालूम होगा। मेरी तो धारणा विपरीत सी है। मेरा तो मानना वह है कि योग के जितने ग्रंथ हैं वे साधक को पढ़ने के नहीं है। वह सिद्ध को पढ़ने के हैं। हालांकि तब पढ़ने की कोई जरूरत नहीं रह जाती--पढ़े

या न पढ़े, लेकिन सिद्ध के पढ़ने के लिए है। और वह केवल पहचानने के लिए है कि जो मुझे मिला उसको पुराने सिद्धों ने क्या नाम दिए हैं। इससे ज्यादा कोई माने नहीं हैं। हर शब्द परंपरा शब्द देती है। जैसे जैनों की परंपरा है, बौद्धों की, हिंदुओं की, योगियों की परंपराएं हैं। जब पहली दफा साधक को समाधि का अनुभव होता है तो उसको कुछ नहीं समझता है, इसको मैं क्या कहूं! कुछ कहने को शब्द होता ही नहीं। समझ लीजिए कि मैं इस घर में आया और मैंने पहली दफा कोई चीज इस कमरे में रखी देखी। मैं उसे देखूंगा जरूर, अनुभव जरूर करूंगा लेकिन शब्द क्या दूं? शब्द तो परंपरा से दिए जाते हैं। तो जब पहली दफे व्यक्ति आत्म-साक्षात्कार करेगा तो उसको समझ में नहीं आता, क्या शब्द दूं। तो अगर वह बौद्ध की परंपरा में पला है तो उसके ग्रंथ इसको बताएंगे कि इसको क्या नाम देना है। अगर वह जैनों की परंपरा में पला है तो जैन परंपरा के ग्रंथ बताएंगे कि इस अनुभूति को क्या नाम देना है। तो उसमें ग्रंथों में लक्षण भी दिए हुए हैं, नाम भी दिए हुए हैं। लक्षण उसको सूचना देंगे कि ठीक, यह बात घट गयी है, और नाम उसे मिल जाएगा। परंपराएं केवल नाम देती हैं, ज्ञान नहीं देती है। ज्ञान अनुभव से आता है, नाम परंपरा से मिल जाते हैं। और उल्टी हमारी स्थिति है, हम पहले नाम पढ़ लेते हैं, ज्ञान तो आता नहीं। नाम सीख जाते हैं और फिर उन्हीं में से हम प्रश्न पूछते रहते हैं, और जिंदगी भर उलझते रहते हैं कि वह क्या है और फलां क्या है, ढिकां क्या है। उससे कुछ हल नहीं होता है। बिलकुल फिकर छोड़ दे नामों की, शब्दों की। कोई चिंता न करें, एक ही चिंता करें कि मेरे भीतर कुछ घटित होता है।

आप कह रहे हैं, थोड़ा सा आता और ज्ञेय का थोड़ा-सा और गहराई से समझा जाए तो उपयोगी होगा।

जब भी मैं किसी वस्तु को जान रहा हूं, किसी भी वस्तु को जान रहा हूं तब उस जानी हुई वस्तु का प्रभाव मुझ पर छूटता है। मैं आपको देख रहा हूं, प्रभाव, एक प्रतिबिंब मेरे भीतर छूटा। कल जब मैं आपको दुबारा देखूंगा तो मैं आपको नहीं देखूंगा, उस प्रतिबिंब के माध्यम से आपको देखूंगा। वह प्रतिबिंब मेरे बीच में आ जाएगा कि कल भी देखा था, यह वही है और उसके माध्यम से मैं आपको देखूंगा। हो सकता है, रात्रि आपको बिलकुल बदल गयी हो। हो सकता है आप बिलकुल दूसरे आदमी हो गए हों। हो सकता है आप क्रोध में आए हों, अब प्रेम में आए हों। लेकिन मेरा जो कल का ज्ञान है वह आज खड़ा होगा, वह मेरी स्मृति होगी। उसके माध्यम से मैं आपको जानूंगा। हम असल में चौबीस घंटे जो भी जान रहे हैं, जो वास्तविक है, उसको हम जान रहे हैं, जो स्मृति का संकलन है, उसके माध्यम से उसकी व्याख्या कर रहे हैं। इस स्मृति के माध्यम से हम उसकी व्याख्या कर रहे हैं, जो ज्ञेय है। इसलिए हम ज्ञेय को भी नहीं जान रहे हैं, बीच में स्मृति का पर्दा है। अगर आप कल मुझे गाली दे गए और आज फिर मिलने आए तो मैं जानता हूं, यह दुष्ट कहां से आ गया! हो सकता है, आप क्षमा मांगने आए हों। हो सकता है आप कहने आए हों कि भूल हो गई है। हो सकता है आप कहने आए हों कि मैं होश में नहीं था, बेहोश था, शराब पीए था।

लेकिन मैं यह सोच रहा हूं कि ये सज्जन कहां से आ गए। और बीच में वह कल का पर्दा आपका खड़ा हो जाएगा। मैं आपके चेहरे को नहीं देखूंगा जो अभी मौजूद है। मैं उस चेहरे को बीच में पहले देखूंगा जो कल मौजूद था।

स्मृति ज्ञेय के और ज्ञाता के बीच में हमेशा खड़ी है। इसलिए हम ज्ञेय को भी नहीं जान पाते। और स्मृति का जो संकलन है उसी को हम ज्ञाता समझ लेते हैं तो भ्रम होता है। ज्ञेय को हम नहीं जान पाते हैं, स्मृति बीच में आ जाती है। और स्मृति का जो संकलन, एकुलमेशन है मेमोरी का, हम समझ लेते हैं, यही मैं जानने वाला हूं। जैसे अगर कोई आपसे पूछे, आप कौन हैं? तो आप क्या बताइएगा? आप कुछ स्मृतियां बताइएगा। मैं फलां का लड़का हूं, यह एक स्मृति है। तीस साल मैंने यह अनुभव लिए, उनमें से कुछ बताएंगे, यहां पढ़ा हूं, यहां नौकरी करता हूं, यहां यह हूं, यहां वह हूं। यह सारी आपकी मेमोरी है बीस वर्ष की। इनका एकुमिलेशन आप हैं। इसलिए कभी-कभी यह होता है कि किसी चोट से अगर स्मृति विलीन हो जाती है और उससे पूछिए कि आप क्या हैं तो वह खड़ा रह जाता है। उसको याद ही नहीं पड़ता कि कोई स्मृति हो। थोड़ी दूर आप कल्पना करिए कि आपकी स्मृति पोंछ दी जाए तो आपसे फिर पूछा जाए कि आप क्या है तो आप खड़े रह जाएंगे। आपको कुछ उत्तर नहीं सूझेगा कि मैं क्या कहूं। क्योंकि आप जो भी उत्तर देते हैं, वह स्मृति से है।

स्मृति का जो संग्रह है, उसी को हम समझ लेते हैं, मैं हूं स्मृति ज्ञेय को भी नहीं जानने देती। स्मृति का संग्रह ज्ञाता को भी नहीं जानने देगा। स्मृति के पीछे ज्ञाता छिपा हुआ है और स्मृति के आगे ज्ञेय बैठा हुआ है। बीच में स्मृति की धारा है। उस तरफ ज्ञेय है, इस तरफ ज्ञाता है, बीच में मेमोरी है। मेमोरी न ज्ञेय को जानने देती है न ज्ञाता को जानने देती है। अगर मेमोरी का, स्मृति विसर्जन हो जाए तो मैं ज्ञेय को पहली दफा देखूंगा। और पहली दफा इंस्टीटीनियस--अलग-अलग घटना नहीं घटेगी यह क्योंकि ज्ञाता और ज्ञेय साथ ही जाने जाएंगे। जिस क्षण मैं ज्ञेय को देखूंगा उसी क्षण ज्ञाता को भी। ये अलग नहीं जाने जाएंगे। दोनों एक साथ, दोनों एक साथ अनुभव होंगे। और वह साथ होना इतना गहरा होगा कि मुझे नहीं मालूम होगा कि ज्ञेय अलग, आता ज्ञाता अलग। मुझे असल में ज्ञान का अनुभव होगा। मुझे कांसेसनेस का अनुभव होगा। अगर मेमोरी विसर्जित हो जाए तो केवल ज्ञान का अनुभव होगा। जब हम कहते हैं, महावीर ने, या किन्हीं और ने अपने समस्त पुराने कर्मों से अपना छुटकारा पा लिया तो मैं पाता हूं, कर्म असल में सिवाय स्मृति के और कुछ भी हनीं है। कर्मबंध का अर्थ स्मृतिबंध है। कर्मबंध का अर्थ है मेमोरी। वह जो हम कहते हैं कर्म चिपक जाते हैं, कर्म नहीं चिपकता है, केवल स्मृति चिपक जाती है। किए हुए की स्मृति चिपक जाती है। किए हुए का संस्कार चिपक जाता है। जिसको महावीर निर्जरा कह रहे हैं, असल में डी-मेमोराइड है।

प्रश्न--स्मृति चिपक जाती है या संस्कार?

उत्तर--एक ही बात है, कुछ भी कह सकते हैं। इंप्रेशंस की है--संस्कार कह लें स्मृति कह लें क्योंकि हम स्मृति उसको कहते हैं जो हमको याद है और अनेक संस्कार हमको ऐसे हैं जो हमको याद नहीं हैं। लेकिन जो हमें याद नहीं हैं वह भी हमारे अवचेतन में मौजूद हैं और सब याद किए जा सकते हैं। मैं भी वहां प्रयोग किया। तो आपको पिछले जन्म याद दिलाए जा सकते हैं। एक पूरी स्मृति धारा याद हो जाएगी आपको एक-एक पर्दा भीतर मौजूद है, उघाड़ा जा सकता है। और आपको फिल्म की तरह सब दोहराने लगेगा, यह हुआ, यह हुआ। और अगर आपकी सारी स्मृति उघाड़ दी जाए तो आप हैरान होंगे, एक दफा जो संस्कार पड़ा है चित्त पर वह मौजूद है। सब संस्कार स्मृति में है। और सच तो यह है कि अगर मैं आपसे अभी पूछूं कि उन्नीस सौ पचास में एक जनवरी को आपने क्या किया, आपको कुछ याद नहीं हैं। आप कहेंगे, इसकी तो विस्मृति हो गई। इसकी विस्मृति नहीं हुई, या अभी मौजूद है। और मैं अभी आपको बेहोश करूं, हिप्नोटाइज करूं और आपसे पूछूं तो आप एक तारीख को ऐसे दोहरा देंगे जैसे अभी देख रहे हैं।

मैं कुछ दिन प्रयोग करता था तो मैं बहुत हैरान हुआ। वह तो कुछ भूलता ही नहीं है। फिर मुझे यह दिक्कत हुई कि पता नहीं एक तारीख को आपने किया या नहीं, या बेहोशी में आप कुछ भी अनर्गल बोलते हैं। फिर मैं कुछ लोगों पर नियमित रूप से ध्यान रखा। उनसे आज मिला तो नोट कर लिया कि उनसे मेरी क्या बात हुई, कि वे क्या कर रहे थे। छह महीने बाद उनको बेहोश करके पूछा, वह तो उन्होंने बताया कि आप दो बजे मुझसे मिले थे और यह मुझसे कहा था। होश में तो उनको पात नहीं कि आप उस दिन उनसे मिले भी थे या नहीं मिले थे।

फिर मैं धीरे-धीरे पिछले जन्मों में भी प्रयोग किया। आप हैरान होंगे, मां के गर्भ में भी आप पर जो संस्कार पड़े हैं, वे स्मरण दिलाए जा सकते हैं। जिस क्षण कंसेप्शन हुआ मां के पेट में आपका, वे संस्कार भी स्मरण दिलाए जा सकते हैं। फिर धीरे से उस पर, उस जन्म के भी जो संस्कार है वे भी स्मरण दिलाए जा सकते हैं। सारे जन्म-मरण की पूरी कथाएं स्मरण आ सकती हैं। वह सब मेमोरी है। और अगर मेमोरी से कोई बिलकुल मुक्त हो जाए तो वह निर्जरा है। अगर ये सारी मेमोरीज ढह जाए और इनसे व्यक्ति पृथक हो जाए और जान ले कि मैं इन मेमोरीज में नहीं हूं, मैं इनके बाहर और अलग हूं। और अगर यह कंडीशनिंग जो मेमोरीज से पैदा हुई है ये सब विसर्जित हो जाएं तो मोक्ष है। स्मृति से मुक्त होना मोक्ष है, और स्मृति में भूलना संसार है। उस स्मृति के विसर्जन में जो भी है वह दिखेगा। स्मृति के विसर्जन में चैतन्य का जागरण है। इसके प्राथमिक प्रयोग विचार के विसर्जन से शुरू होंगे, क्योंकि स्मृति भी केवल विचार के प्रवाह का अंग है, और कोई खास बात नहीं है।

प्रश्न--अस्पष्ट

उत्तर--ना, फार्स्ट और सेकेंड का कोई सवाल नहीं है। फर्स्ट और सेकेंड का सवाल मेमोरी में है। जैसे मैं यहां बैठा हूं। मैंने इस तरफ से देखना शुरू किया तो जरूर मैं किसी को पहले दिखता हूं, किसी को दूसरे दिखता हूं, फिर किसी को तीसरा देखता हूं। लेकिन जब मैं पहले

को देख रहा हूं तब भी दूसरा उसी वक्त पूरा का पूरा मौजूद है। जब मैं तीसरे को देख रहा हूं तब भी दो मौजूद हैं। हम यहां सारे लोग साइमलटेनियसली मौजूद हैं। लेकिन जब मैं देखता हूं, मेरी मेमोरी में मैं जब स्मरण करूंगा तो मैंने पहले एक को देखा, फिर दूसरे को देखा, फिर तीसरे को देखा। जगत में जो एक्जिस्टेस है वह साइमल्टेनियस है, केवल मेमोरी में पोस्ट, प्रेजेंट और फ्यूचर है। जगत में यह कहीं भी नहीं है। जगत में अतीत है ही नहीं, जगत में भविष्य है ही नहीं, जगत में सतत वर्तमान है। जगत में कहीं कोई अतीत संग्रहीत नहीं होता, जगत में कहीं कोई भविष्य खुलने को नहीं है। जगत एक इटर्नल नाउ है जो प्रत्येक क्षण पूरा जगत एक सतत प्रवाह है--एक्चुअल जगत जो है।

हमारी स्मृति में अतीत, वर्तमान, भविष्य होते हैं। इसलिए टाइम जो है, समय जो है, वह केवल मेमोरी से पैदा हुई चीज है, टाइम कहीं है नहीं। प्रेजेंट जो हैं वह मेमोरी के हिस्से हैं, वह मेमोरी के हिस्से हैं, इसलिए जिसकी मेमोरी चली जाएगी वह टाइमलेसनेस मग चला जाएगा, उसे टाइम का पता नहीं रहेगा। इसलिए लोगों ने कहा, समाधि जो है वह समयातीत है, समय के बाहर है, कालातीत है। वह काल के बाहर है। समाधि में समय नहीं है, काल नहीं है, क्षेत्र नहीं है, केवल होना मात्र है। स्मृति में जो सीक्वेंस है, कुछ चीजें पहले हैं, कुछ चीजें बाद में हैं, कुछ चीजें आगे हैं, उसकी वजह से, उस सीक्वेंस की वजह से टाइम बनता है। अगर सारी मेमोरी विलीन हो जाएं, थोड़ी देर को समझ लीजिए, आपकी सारी मेमोरी अगर विलीन हो गई तो पहले आपका जन्म हुआ, बाद में आपकी मृत्यु हुई, यह आपको पता नहीं चल सकता है। बहुत अजीब सा लगेगा। सारी मेमोरी जब विलीन हो गयी तो आपका पहले हुआ और मृत्यु बाद में हुई, ऐसा नहीं कहा जा सकता। शायद उस मेरोरीलेस स्थिति में ये घटनाएं साइमल्टेनियस में ये घटनाएं हो ही नहीं। आपको पता ही नहीं पड़े कि कब आप जन्मे और कब आप मरे। यह कब जो है--आगे और पीछे का संबंध वह स्मृति का है स्मृति विलीन हुई तो कब आगे पीछे विलीन हो गया, सीक्वेंस विलीन हो गया।

इसलिए एक बहुत अदभुत बात, जो मुझे दिखाई पड़ने लगी, महावीर पच्चीस सौ साल पहले मुक्त हुए और आप भी मुक्त हो जाएं, तो हमको लगता है कि पच्चीस सौ साल बाद मुक्त हुए। लेकिन कांसेसनेस का जो जगत है वहां दोनों साइमल्टेनियस मुक्त हो रहे हैं। एक ही साथ मुक्त हो रहे हैं। और यह बात तो अजीब सी होगी, फिर कोई माने ही ह्नीं होगा दिखने में ऊपर। यह हमारी मेमोरी है जो पच्चीस सौ साल आगे-पीछे करती है। चैतन्य के जगत में सब एक साथ मुक्ति हो रहे हैं और एक साथ बद्ध हैं। वहां कोई समय नहीं है, वहां कोई आगे पीछे नहीं है।

प्रश्न--आदमी जब पागल हो जाता है उसकी क्या हालत है?

उत्तर--हां, अगर आदमी जब पागल हो जाता है तो आदमी अब अकेला स्मृति रह गया, उसे अब बिलकुल भी होश नहीं है अपने स्व की। केवल मेमोरी रह गयी। आप हैरान होगे, वह जिस दिन पागल होता है उस दिन के बाद की उसकी कोई मेमोरी नहीं रहती है, उसके पहले

की ही मेमोरी रहती है अगर एक आदमी आज सुबह पागल हो गया तो वह जितनी बातें करेगा वह आज के सुबह के पहले की हैं, आज के सुबह के बाद की कोई बात नहीं करेगा। आज के सुबह के बाद की कोई मेमोरी नहीं बन रही। अब आज के सुबह के पहले की सब मेमोरी होगी, उन्हीं को दोहराएगा। उन्हीं को बोलेगा, उनकी बकवास करेगा, वह वही बातें करता रहेगा। उसने होश बिलकुल खो दिया और जिस घड़ी उसने होश खो दिया, उस क्षण तक जितनी मेमोरी है, अब वही रिपीट होती हरेगी। और इसीलिए वह हमको पागल दिखेगा क्योंकि यह हमेशा असंगत होगा और वर्तमान में उसके ऊपर कोई प्रभाव पड़ नहीं रहे। उसके सब प्रभाव पीछे के रह गए है। इसीलिए पागल में और मुफ्त में करीबी अनुभव एक सी कुछ बातें मालूम होंगी। एक मैं सिर्फ पीछे के अनुभव रह गए हैं, वर्तमान के कोई अनुभव नहीं पैदा हो रहे हैं। वह भी हमको पागल लगेगा क्योंकि वर्तमान से उनकी कोई संगति नहीं है। और मुक्त और सिद्ध भी हमको कुछ न कुछ पागल प्रतीत होगा क्योंकि न उसमें अतीत के कोई स्मरण रह गए हैं, न भविष्य के, न वर्तमान के। उसमें भी हमें थोड़ा-सा पागल की झलक मालूम होगी।

इसलिए सारे साधुओं को, सारे संतों को हम चाहे कितना ही आदर हैं, हमको थोड़ा बहुत यह शक बना ही रहता है कि कुछ पागल तो नहीं है! हमारा जो भाव है वह कहीं न कहीं उनके पागल होने का बना रहता है और कहीं किसी किनारे पर वह पागल के करीब मालूम होते हैं। उनकी आंख में भी वही वैक्यूम दिखाई पड़ेगा जो पागल की आंख में दिखाई देता है। वही वैक्यूम--वही आपको देखते हुए भी जैसे आपका नहीं देख रहे हैं, वही बात। आपके बिलकुल करीब होकर भी जैसे आप दूर हों, वही बात। आंख में वैक्यूम मालूम होगा, जैसे आपको कोई प्रतिबिंब उनकी आंख में नहीं बनता है। आपको वह कोई मेमोरी नहीं पकड़ा रहे हैं। इसलिए बड़े से बड़े सिद्ध की आंक में झांककर जो आपको पहला अनुभव होगा, वह पागल का होगा। तो आंखें जो अनुभव होगा वह पागल होगा। तो थोड़ा सा दोनों में करीब ही बात है। दोनों में स्मृति का एक संबंध एक सा हो गया है। एक स्मृतियां टूट गई हैं विक्षोभ के कारण। उसके पहले जितनी बनी हैं वह विक्षुब्ध उसमें तैर रही हैं। उसका अब जीवन असंगत हो गया है। एक में स्मृतियां टूट गई हैं अविक्षुब्ध, शांति के कारण। उसमें भी कुछ लहरें नहीं उठ रही हैं। एक विक्षोभ के कारण सब टूट खंडित हो गया है। एक मैं शांति के कारण सब खंडित हो गया है। दोनों बिलकुल अलग कोनों पर खड़े लोग हैं, लेकिन दोनों एक बात कहीं कुछ समान है। इसलिए भक्त उनको, जिनका भक्त है, साधु समझ लेते हैं, गैर भक्त उसको पागल समझते रहते हैं। तो कोई अंतर नहीं पड़ रहा है।

प्रश्न--अस्पष्ट

उत्तर--बहुत फर्क है। फर्क उतना ही है कि हिप्नोसिस जो है, सम्मोहित जो कर रहा है, इस सम्मोहन में भी घटना करीब-करीब वैसी ही घट रही है। जैसे स्वयं ध्यान करने पर घटेगी--करीब-करीब वैसे ही। इसमें भी सूक्ष्म शरीर बाहर निकाला जा सकता है, भेजा जा सकता है, देखा जा सकता है, लेकिन यह दूसरे के द्वारा इनडयूस्टहै और जबर्दस्ती है और फोर्स्ड

है। यह दूसरे के द्वारा आपमें की गई घटना है। दूसरे के द्वारा की गयी घटना से आपको लाभ नहीं है, शायद नुकसान है। आपको कोई लाभ नहीं है। आपके कुछ साइकिक काम करवा ले सकता है लेकिन आपको कोई लाभ नहीं, वरन आपको नुकसान है। आपकी जो अपने रिदम और जर्मनी है आपके साइकिक शरीर की, उसको इसके प्रयोग से नुकसान पहुंचेगा। और जब स्वयं आप अपने प्रयोग से सहज बाहर निकलते हैं तो आपको नुकसान नहीं है, बल्कि अपने भीतर के कुछ राजों कुछ रहस्यों का अनुभव होता है। हिप्नोसिस बेहोशी है बेहोशी में आपमें कुछ होता है और समाधि परिपूर्ण जागरूकता है। जागरूकता में कुछ हो रहा है। जागरूकता में जब कुछ होता है स्वयं के भीतर तो आप अपने जगत और जीवन के रहस्य के कुछ नए तथ्यों से परिचित होते हैं, वह परिचय आपको आत्मसाधना में सहयोगी होता है। हिप्नोसिस में आप तो परिचित होते नहीं, आप तो बेहोश हैं, आप को कोई लाभ नहीं होता है। लेकिन घटना करीब-करीब एक सी घटती है।

पुरानी स्मृतियां जगानी हों, तो हिप्नोटाइज के बिना कोई रास्ता नहीं है या फिर अटो-हिप्नोटाइज, अपने को खुद करना पड़े तब कोई रास्ता है। इस मुल्क में हिप्नोटिज्म का प्रयोग बहुत प्राचीन है। लेकिन उसका उपयोग उस ढंग से कभी नहीं किया गया जैसा पश्चिम में कर रहे हैं। इस मुल्क में हिप्नोटिज्म का प्रयोग भी साधना के पक्ष में किया गया। हिप्नोटिज्म के माध्यम से व्यक्ति को कई सहायताएं पहुंचाई जा सकती हैं साधना में। वह सहायता इस मुल्क में पहुंचाई गई। हिप्नोटिज्म का और कोई प्रयोग कभी नहीं हुआ है। पश्चिम में वह उसके दूसरे प्रयोग शुरू किए हैं क्योंकि उनकी आत्मसाधना से उनका कोई संबंध नहीं है। तो वहां घातक परिणाम आने शुरू हुए। अभी तो उन्होंने वहां अमरीका में हिप्नोटिज्म के खिलाफ एक कानून भी विचार है क्योंकि उसके बहुत घातक परिणाम हो सकते हैं।

टेप न. १० बंबई दिनांक ७ मई १९६८